खंड

4

अनुवाद चिन्तक

इकाई 12

पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (1) 147

इकाई 13

पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (2) 166

इकाई 14

भारतीय अनुवाद चिन्तक 177

खंड परिचय

खण्ड 4 अनुवाद चिन्तक

प्रस्तुत खण्ड '**अनुवाद चिन्तक**' अनुवाद अध्ययन कार्यक्रम के पाठ्यक्रम '**अनुवाद सिद्धांत**' (एम.टी.टी. 10) का चौथा और अन्तिम खण्ड है। इस खण्ड में तीन इकाईयां शामिल हैं। प्रस्तुत खण्ड में अनुवाद सिद्धांतकारों एवं चिन्तकों का वर्णन अभीष्ट है। पूरे पाठ्यक्रम के संयोजन के आलोक में इकाई 12 **पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (1)**, तथा इकाई 13 **पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (2)** पाश्चात्य अनुवाद चिन्तकों के विवेचन तथा सिद्धांतों पर केन्द्रित है। दो इकाईयों में पाश्चात्य अनुवाद चिन्तकों के पूरे परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करना संभव नहीं पर कोशिश की गई है कि विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि चिन्तकों अथवा प्रस्थान निर्मित करने वाले अनुवाद चिन्तकों को शामिल किया जाये। इसके साथ ही 20वीं शताब्दी के अनुवाद चिन्तकों के परिचय के साथ-ही उनके अनुवाद चिन्तन की विकास परम्पराओं को भी समझा जा सके। इस दृष्टि से इकाई 12 पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (1) में यूजीन नायडा, जै.सी. कैटफर्ड, पीटर न्यूमार्क तथा गिडियन टोरी का परिचय देते हुए उनके सिद्धांतों की जानकारी दी गई हैं। इकाई 13 पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक के अन्तर्गत तीन रचनाकार अनुवादकों सिद्धांतकारों एवं चिन्तकों' वाल्टर बेंयामिन, एजरापउण्ड, ब्लादीमीर नोबाकोव तथा तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण अनुवाद चिन्तकों जार्ज स्टेनर, इटामर इवान जोहर तथा एन्द्रे लेफेवयर के अनुवाद चिन्तन के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है। अलग से रेखांकित करने की आवश्यकता नहीं कि बेंयामिन से लेकर लेफेवेयर तक के उपर्युक्त चिन्तकों का अनुवाद अध्ययन के स्वरूप और विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है तथा आज भी ये अनुवाद चिन्तन में केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं। **भारतीय अनुवाद चिंतक** शीर्षक इकाई 14 के अन्तर्गत भारतीय अनुवाद चिन्तन की परम्परा का वर्णन करते हुए भारत में प्राचीन काल में हुए अनुवाद चिन्तन के अतिरिक्त मुगलकालीन अनुवाद चिन्तक तथा देशीय अनुवाद चिन्तन की कुछ आंतरिक धाराओं पर विचार किया गया है।

इकाई 12 पाश्चात्त्य अनुवादक चिंतक (1)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की परम्परा का विकासक्रम : संक्षिप्त परिचय

- 12.2.1 वर्गीकरण
- 12.2.2 बीसवीं सदी (1950-1960)
- 12.2.3 बीसवीं सदी (1960-1965)
- 12.2.4 बीसवीं सदी (1965-1975)
- 12.2.5 बीसवीं सदी (1975-वर्तमान)

12.3 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतक : कृतित्त्व एवं अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

- 12.3.1 यूजीन नायडा (Eugene Nida)
- 12.3.2 जे. सी. कैटफर्ड (J. C. Catford)
- 12.3.3 पीटर न्यमार्क (Peter Newmark)
- 12.3.4 गिडियन टॉरी (Gideon Toury)

12.4 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की अवधारणा : उपयोगिता/प्रासंगिकता

- 12.4.1 यूजीन नायडा
- 12.4.2 जे. सी. कैटफर्ड
- 12.4.3 पीटर न्यूमार्क
- 12.4.4 गिडियन टॉरी

12.5 अनुवाद का स्वरूप : अनुवाद चिंतकों की अवधारणाओं के संदर्भ में

- 12.5.1 यूजीन नायडा
- 12.5.2 जे. सी. कैटफर्ड
- 12.5.3 पीटर न्यूमार्क
- 12.5.4 गिडियन टॉरी

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

12.8 शब्दावली

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की परम्परा के विकास क्रम का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में निर्धारित अनुवाद चिंतकों में से - यूजीन नायडा, जे. सी. कैटफर्ड, पीटर न्यमार्क और गिडियन टॉरी- के द्वारा लिखित अनुवाद संबंधी ग्रंथों की संक्षिप्त जानकारी हासिल कर सकेंगे।

इन्हीं अनुवाद चिंतकों के अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण के बारे में चर्चा कर सकेंगे।

इनकी अनुवाद संबंधी अवधारणाओं की अनुवाद के क्षेत्र में उपयोगिता से अवगत हो सकेंगे।

आप जाप सकेंगे कि इन अनुवाद चिंतकों की अवधारणाओं के आधार पर अनुवाद का क्या स्वरूप उभरकर हमारे सामने आता है।

12.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों, पिछले खंडो की इकाइयों में आप भारतीय एवं पाश्चात्त्य परिप्रेक्ष्य में अनुवाद चिंतन के विभिन्न आयामों से अवगत हो चुके हैं। इस खंड की पहली इकाई अर्थात् इकाई संख्या-12 में आप विशेष रूप से पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की परम्परा के विकास-क्रम की संक्षिप्त जानकारी हासिल करते हुए कुछ महत्वपूर्ण पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों के कृतित्त्व, अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण, अनुवाद संबंधी अवधारणाओं की उपयोगिता और उनके द्वारा प्रतिपादित अनुवाद के स्परूप के बारे में जान सकेंगे। इस ईकाई में जिन पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों को अध्ययन के लिए शामिल किया गया है। उनके नाम है- यूजीन नायडा, जे. सी कैटफर्ड, पीटर न्यूमार्क, गिडियन टॉरी। निश्चित रूप से यह महत्वपूर्ण जानकारी आपके लिए अुवाद चिंतन के संदर्भ में सहायक सिद्ध होगी। अगली इकाई में आप कुछ अन्य प्रमुख पाश्चात्त्य चिन्तकों के सिद्धान्तों से परिचित होंगे।

12.2 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की परम्परा का विकासक्रम : संक्षिप्त परिचय

हम सबसे पहले पाश्चात्य अनुवाद चिंतकों की परम्परा के क्रम पर दृष्टि डालते हैं विश्व-साहित्य में अनुवाद-चितन की परम्परा पुराने समय से चली आ रही है। पाश्चात्त्य देशों में बहुत पहले से यह परम्परा देखने को मिलती है। प्राचीन युग में जहां अनुवाद संबंधी कोई सैद्धांतिक एवं समीक्षात्मक चिंतन स्वतंत्र एवं विधिवत रूप से नहीं किया गया, वहीं आज पूरे विश्व में अनुवाद विषय से संबंधित सभी पक्षों पर सुव्यवस्थित ढंग से अनुवाद- चिंतकों के द्वारा चिंतन-मनन किया जा रहा है। आज के युग में अनुवाद के क्षेत्र में निरन्तर बढ़ती हुई गतिविधियों के कारण पिछले कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अनुवाद-चिंतन की लम्बी परम्परा को आरम्भ से लेकर आज तक अनेक अनुवाद-चिंतकों ने अपनी अवधारणाओं एवं मान्यताओं को प्रतिपादित करके सुदृढ़ बनाया है ।

12.2.1 वर्गीकरण

अनुवाद-चिंतकों की परम्परा के विकास-क्रम को सुविधा की दृष्टि से दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है- बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध। पहले भाग में रोमन युग पुनर्जागरण युग, रोमांटिक युग, विक्टोरियन युग के अनुवाद- चिंतन शामिल है तथा दूसरे भाग में मशीन-अनुवाद, व्यवहार आधारित अनुवाद, भाषा वैज्ञानिक अनुवाद, संरचनावादी अनुवाद, शैली वैज्ञानिक अनुवाद, रूपात्मक अनुवाद, संकेत वैज्ञानिक अनुवाद आदि से संबंधित अवधारणाओं -मान्यताओं को स्थापित, विकसित एवं पुष्ट करने वाले अनुवाद- चिंतक शामिल है।

उपर्युक्त विभिन्न युगों, धाराओं, क्षेत्रों एवं पद्धतियों से संबंधित विभिन्न अनुवाद-चिंतकों में जिन मुद्दों पर निरन्तर बहस होती रही उनमें से कुछ प्रमुख मुद्दे इस प्रकार है :-

(1) शब्दानुवाद (Literal Tranlation) अथवा भावानुवाद (Free Translation)

(2) शब्दानुगामी अनुवाद (Synatic Translation) अथवा अर्थानुगामी (Semantic Translation)

(3) मूलनिष्ठ अनुवाद (Faithful Translation) तथा स्वतन्त्र अनुवाद (Free Translation)

(4) लेखक केन्द्रित अनुवाद (Author-Oriented) अथवा पाठक केन्द्रित अनुवाद (Reader-oriented Translation)

(5) स्रोत भाषा अनुवाद (Source Language Oriented Translation) अथवा लक्ष्य भाषा केन्द्रित अनुवाद (Target Language Oriented Translation)

(6) पारम्परिक दृष्टिकोण प्रधान अनुवाद (Translational Attitude Based Translation-TABT) अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान अनुवाद (Seicntefice Attitude Based Translation-SABT)

(7) संस्कृति आधारित अनुवाद (Culture Based Translation-CBT) अथवा भाषाविज्ञान आधारित अनुवाद (Linguistics Based Translation-LBT)

(8) समतुल्य अभिव्यक्ति (Exact Equivalence) अथवा समीपतुल्य अभिव्यक्ति (Approxinate Equivalence)

(9) अगत्यात्मक सममूल्यता (Static Equivalence) अथवा गत्यात्मक समूल्यता (Dynamic Equivalence)

(10) सैद्धांतिक प्रभावसमता (Theoretical Equivalence) अथवा प्रकार्यात्मक प्रभावसमता (Functional Equivalence)

12.2.2 बीसवीं सदी (1950-1960)

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आधुनिक भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित अनुवाद चिंतन का आरंभ हुआ। इस दौरान अनेक ऐसे अनुवाद चिंतकों ने अनुवाद अध्ययन किया जो भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सुपरिचत थे। इस संदर्भ में संरचनात्मक भाषा विज्ञान का विकास, अर्थ विज्ञान की प्रगति, अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का विकास, संप्रेषण सिद्धांत तथा भाषा विज्ञान का समन्वय संकेत विज्ञान, रूपात्मक अनुवाद आदि का आरंभ, विकास और स्थापना ऐसी घटनाएं हैं जो अनुवाद-चिंतन की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

1950 से लेकर 1960 तक की अवधि में जेराल्ड कैट्स, डब्ल्यू वैन ऑरमन क्वीन, एन्डरी फेडरोव आदि विद्वानों ने मशीन-अनुवाद के क्षेत्र में कार्य किया जो कि इस शताब्दी की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती हैं। मशीन की आवश्कताओं के अनुसार भाषा के भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण के प्रारूप तैयार किए तथा प्रौद्योगिकीय पाठों (Technogical Texts) के अनुवाद में कम्प्यूटर से काफी सहायता ली गई। आज अनुवाद के क्षेत्र में मशीन अनुवाद के विकास की संभावनाएं निरन्तर बढ़ती जा रही है।

12.2.3 बीसवीं सदी (1960-1965)

1960 से 1965 तक की अविध व्यवहार आधारित अनुवाद से संबंधित है जिसमें एजरा पाउण्ड, फ्रेडरिक विल जैसे अनुवाद-चिंतकों के विचार महत्वपूर्ण हैं। पाउण्ड के अनुसार किसी भी कलाकृति का अर्थ कभी भी निश्चित नहीं किया जा सकता। भाषा के बदलने के साथ-साथ उस कृति का अर्थ भीबदल जाता है। वे अनूदित कृति एवं उसमें प्रयुक्त शब्दों के अर्थ पर कम बल देते हैं और शब्दों की गति, तान, प्रयुक्ति आदि पर अधिक।

12.2.4 बीसवीं सदी (1965-1975)

1965 से 1975 तक की अवधि में आधुनिक भाषा-विज्ञान के विभन्न पक्षों पर आधारित अनुवाद पर चॉम्सकी, नायडा, कैटफर्ड, विल्स आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किया। इस इकाई में आगे चलकर आप नायडा और कैटफर्ड के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल करेंगे।

12.2.5 बीसवीं सदी (1975-वर्तमान)

1975 से लेकर वर्तमान तक अनेक आधुनिक दृष्टिकोण एवं विचारधारा वाले अनुवाद-चिंतकों ने अनुवाद-चिंतन की परम्परा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस अवधि में अनुवाद-सिद्धांत के चिंतन-मनन से संबंधित अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। अनुवाद के संदर्भ में अनुवाद-चिंतकों द्वारा किए जा रहे भाषा-वैज्ञानिक एवं शैली-वैज्ञानिक अध्ययन को स्वीकृत मिली। प्राग स्कूल के विद्वानों, विशेषकर व्लादीमीर नोबाकोव, रोमन जाकोबसन, जिरी लेवी तथा अनेक चेक, रूसी, जर्मन, फ्रांसीसी अनुवाद चिंतकों ने अनुवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर वैज्ञानिक ढंग से चिंतन-मनन करते हुए नए मानदण्ड स्थापित किए। जिरीलेवी ने कहा कि अनुवादक के लिए दोनों भाषाओंका पर्याप्त ज्ञान का होना अति आवश्यक है- A Translation is not a monistic Composition, but an interpretation and Conglomerate of two Structures.

(- J. Levy, The Art of Translation, Prague, 1963, cited in James S. Holmes (ed) The Nature of Translation, The Haque : Mounton, 1970.)

आधुनिक अनुवाद चिंतक आन्द्रे लेफवरे अनुवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों में समन्वय स्थापित करना चाहते हैं। वे अनुवाद अध्ययन के प्रयोजन की परिभाषा देते हुए सुझाव देते हैं कि इसका प्रयोजन एक ऐसा अनुवाद संबंधी बृहद एवं विस्तृत विद्धांत प्रतिपादित करना है जो कि अनुवाद व्यपार में मागदर्शक की भूमिका निभा सके। इस संदर्भ में उनका कथन है कि- "Its purpose was to produce a comprehensive theory which can also be used as a guideline for the production of translation."

– A ndre Lefevere. 'Translation Studies : The good of the Disicpline' games S. Holmes (ed) The nature of Translation.

इस प्रकार अन्य सभी आधुनिक अनुवाद-चिंतकों ने अनुवाद अध्ययन की परम्परा को आगे बढ़ाया है और इस दिशा में निरन्तर शोध कार्य किया जा रहा है। यह अनुवाद जगत के लिए उत्साह जनक स्थिति का संकेत है। इसी इकाई में आप पीटर न्यूमार्क एवं गिडियन टॉरी जैसे अनुवाद- चिंतकों का भी विस्तृत अध्ययन करेंगे।

12.3 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतक : कृतित्त्व एवं अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

12.3.1 यूजीन नायडा

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पाश्चायत्त्यअनुवाद चिंतन के विकास क्रम को गति प्रदान करने वाले अनुवाद- चिंतकों की परम्परा में यूजीन नायडा का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुवाद संबंधी अवधारणाओं को प्रस्तुत करने, विकसित करने तथा पुष्ट करने के प्रयोजन से नायडा ने विभन्न ग्रंथों की रचना की और उनके माध्यम से अपनी बहुआयामी विचार- श्रंखला को अभिव्यक्ति किया। इन रचनाओं में एक ओर नायडा की मौलिक रचनाएं हैं और दूसरी ओर अन्य विद्वानों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं का जवाब देने के प्रयोजन से लिखी गई रचनाएं हैं। इनमें कुछ ग्रंथ प्रस्तक रूप में हैं और कुछ शोध लेखों के रूप में जो कि विभिन्न शोंध प्रत्रिकाओं में प्रकाशित है

उनके कृतित्त्व का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है:-

नायडा की कृतियां

- Nida, Eugene A. (1952) *God's word in Man's Language*. New Yark; Harper and Brothers.
- Nida, Eugene A. (1960) *Message and Mission : The Communication of the Christian Faith*. New Yark: Harper and Brothers.
- Nida, Eugene A. (1964) *Towards a Science of Translating*. Leiden: E. J. Brill.
- Nida, Eugene A. (1969) "*Science of Translation*" Language 47:483-98
- Nida, Eugene A. (1974) "*Translation*" in Thomes A. Sbeok (Ed) Current Trends in Linguistics, vol. 12. The Hague ; Mouton, 1045-66
- Nida, Eugene A. (1976) "*A Frame work for the Analysis and Evaluation of Theories of Translation*" in Richard W. Brislin (Ed) Translation : Applications and Research. New Yark:
- Nida, Eugene A. and William D. reyburn (1981) *Meaning across Culatures*. American Society of Missiology Series. Maryknoll, New Yark: Or bis Books.

नायडा के अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

यहां जिन ग्रंथों के विषय में बताया गया है उनके अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि नायडा अपने पूर्ववर्ती भाषा-वैज्ञानिक चिंतक नॉम चॉम्स्की की भाषा-वैज्ञानिक अवधारणाओं से अत्यधिक प्रभावित हैं। सिद्धांततः चॉम्स्की

तथा अन्य संरचनवादी भाषा-वैज्ञानिकों की भांति नायडा मात्र संकेत की अपेक्षा उसके द्वारा अभिव्यक्ति किए गए अर्थ विशेष को ही अधिक महत्व देते हैं। वे संकेतों के संदर्भ में किए अनुवाद कार्य द्वारा संप्रेषित संदेश को दूसरे दर्ज़े का मानते है। नायडा की मान्यता है कि इस प्रकार की अर्थ संबंधी प्रकार्यात्मक परिभाषा (Functional definition of meaning) उन सभी परम्परागत अर्थ संबंधी परिभाषाओं से कहीं बेहतर है जिनका उद्देश्य मात्र दार्शनिक खोज-बीन करना ही था। अतः नायडा की यह व्यावहारिक मान्यता भाषा की आंतरिक संरचना (deep structure) संबंधी पारम्परिक सिद्धांतों से भिन्न है। यह किसी न किसी रूप में चॉम्स्की की अवधारणा को समर्थन करती है। नायडा की अर्थ संबंधी व्यवहारिक अवधारणा वास्तव में संरचनात्मक दृष्टिकोण से सतही तौर पर जुड़ने के बजाय आधार भूत स्तर पर जुड़ती है। इसके परिणाम स्वरूप नायडा की मान्यता की प्रकृतिद्विपक्षीय है। यह दो पक्षों-भाषागत संरचना एवं सार्वभौमिक मानवीय अनुभव के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन दोनों पक्षों के तालमेल के लिए ही नायडा ने अपनी अवधारणा को विस्तृत रूप देते हुए उसमें स्रोत-भाषा के संदेश को ग्रहण करने संबंधीसार्वभौमिक अनुभव को शामिल करना आवश्यक समझा। इस प्रकार के मौलिक संदेश को ही नायडा संदेश का वास्तविक उद्देश्य अथवा कार्य मानते हैं।

नायडा का मत है कि किसी भी भाषा का संदर्भ विशेष में संकेतों द्वारा निर्मित आंतरिक संरचना का अर्थ दो प्रकार से ध्वनित किया जा सकता है। प्रथम उस भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन के द्वारा और द्वितीय उन संकेतों की लम्बे समय से चली आ रही प्रयोगधर्मिता के द्वारा। तभी उस भाषिक संरचना का सही अर्थ निकाला जा सकता है और उसे सार्वभौमिकता का दर्जा दिया जा सकता है। नायडा की अनुवाद दृष्टि का मूलभूत आधार यह है कि मूल कृतिके संदेश को न केवल सुनिश्चत किया जा सकता है अपितु उसका अनुवाद भी किया जा सकता है। इस अनूदित पाठ का लक्ष्य भाषा का पाठक लगभग वैसा ही अर्थ ग्रहण कर सकता है जैसा कि मूल कृतिके पाठक ने किया होगा। नायडा के अनुसार अनुवाद में सतही प्रस्तुतीकरण से संबंधित तथ्यों का कोई महत्व नहीं है। उनकी प्रबल धारणा है कि सहज एवं मूल कृति जैसे लगने वाले अनूदित पाठ के लिए कुछ सीमा तक विभिन्न प्रकार के परिवर्तन किए जा सकते है ताकि लक्ष्य भाषा अपने पाठक पर लगभग वैसा ही प्रभाव डाले जैसा कि स्रोत भाषा।

नायडा ने अनुवाद के संदर्भ में दो प्रमुख बातें सामने रखी हैं (1) अनुवाद प्रक्रिया के दौरान अर्थ-निर्धारण और (2) सार्वभौमिक संरचनात्मकता के विभिन्न आयाम। चॉम्स्की के प्रभाव के परिणाम स्परूप नायडा का धार्मिक दृष्टि से किया गया अनुवाद कार्य अनुवाद की समस्या का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुआ है। वस्तुतः नायडा की अवधारणा कुछ विशेष संरचनाओं द्वारा निर्मित एक ऐसी प्रक्रिया पर आधारित हैं जिससे अन्य सभी पक्षों का उद्घाटन किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत नायडा मौलिक रचना की बाह्य (स्थूल) से आंतरिक संरचना (सूक्ष्म) की ओर जाते हैं, आंतरिक संरचना को लक्ष्य भाषा की आंतरिक संरचना में परिवर्तित करते हैं और फिर बाह्य संरचना का निर्माण करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नायडा अनुवाद में डिकोडिंग (decoding) और रिकोडिंग (recoding) की प्रक्रिया अपनाते हैं जिससे मौलिक संदेश अथवा कथावस्तु में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाता।

अनुवाद संबंधी अपने दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्ट करते हुए नायडा कहते हैं कि अनुवादक को न केवल स्रोत भाषा के संदेश के ऊपरी अर्थ को ही समझना चाहिए, बल्कि अर्थच्छवियों की विभिन्नता, शब्दों के भीतर छिपी महत्वपूर्ण भाव प्रधान विशिष्टता तथा शैली प्रधान तत्वों की सूक्ष्मता को भी भली-भांति आत्मसात् करना चाहिए क्योंकि ये ही वे तत्व हैं जो उस संदेश/कथावस्तु के वास्तविक मर्म को, संवेदना को उद्घाटित करते हुए सही अर्थ को सुनिश्चित करते हैं।

12.3.2 जे. सी. कैटफर्ड

1965 में प्रकाशित अपने महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय ग्रंथ- 'A Linguistic Theory of Translation' उन्होंने अनुवाद अध्ययन के संदर्भ में भाषा का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसका भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण किया और अनुवाद के संदर्भ में उसका प्रयोग करते हुए अनेक पक्षों पर प्रकाश डाला। वास्तव में यह ग्रंथ एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के अनुप्रयुक्त भाषिकी संस्थान में दिएगए व्याख्यानों पर आधारित छात्र-छात्राओं के लिए अभीष्ट था। सामान्य पाठक के लिए अपेक्षाकृत अधिक ग्राह्य बनाने के लिए इस ग्रंथ में एक प्रारंभिक अध्याय जोड़ दिया गया है जिसमें भाषा की प्रकृति,

सामान्य भाषिकी की कोटियां तथा अनेक उदाहरणों की आधार भूत अंग्रेजी के विश्लेषण एवं वर्णन की रूपरेखा का संक्षेप में विवेचन किया गया हैं। इस ग्रथ की भूमिका में कैटफर्ड कहते हैं कि विषय के विशेष अध्ययन पर आधारित होने के कारण कुछ अंश तकनीकी हो गए हैं, किंतु इससे सामान्य पाठक को निराश नहीं होना चाहिए। वे कहते हैं कि भाषा-शिक्षण में अनुवाद के प्रयोग की सीमा से संबंधित समस्या शिक्षकों के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है। अनुवाद संबंधी सिद्धांतों में, जैसे कि अनुवाद क्या है, अनुवाद-सादृश्य की प्रकृति, अनुवाद-तुल्यता, तथा भाषा के किन्हीं स्तरों पर अनुवाद कार्य किया जा सकता है, इत्यादि विषयक किसी सिद्धांत का समर्थन बिना सफल विचार-विमर्श किए नहीं किया जा सकता। कैटफर्ड का यह ग्रंथ अनुवाद का एक अंतरिम एवं अपूर्ण रूप में ऐसा सिद्धांत स्थापित करता है कि जिसका प्रयोग विशिष्ट अनुवाद समस्याओं पर विचार करने के लिए किया जा सकता है।

कैटफर्ड का अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

कैटफर्ड की अनुवाद संबंधी अवधारणाओं का आधार संरचनात्मक भाषा-विज्ञान के विभिन्न पक्ष हैं जिनका जिक्र उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ- A linguistic Theory of Translation में किया है। इसके अन्तर्गत वे अनुवाद तुल्यता अथवा सममूल्यता, अर्थ एवं समग्र अनुवाद तथा शब्दशास्त्रीय अनुवाद आदि की अवधारणाओं को स्पष्ट करते हैं।

अनुवाद संबंधी भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के संदर्भ में कैटफर्ड कहते हैं कि अनुवाद का सिद्धांत भाषाओं के बीच संबंधों के निश्चित प्ररूप (type) से संबंधित है और इसके परिणाम स्वरूप यह तुलनात्मक भाषिकी की एक शाखा है। अनुवाद सिद्धांत के दृष्टिकोण से अनुवाद तुल्यताएं (equivalence) स्थापित की जा सकती हैं और भाषाओं अथवा बोलियों के किन्हीं भी युग्मों के मध्य अनुवाद किए जा सकते हैं, चाहे वे संबंधित हो अथवा न हो, तथा उनके बीच चाहे किसी भी प्रकार का स्थानिक (spatial), कालसूचक (tamporal), सामाजिक या अन्य संबंध हो। कैटफर्ड की मान्यता है कि एक प्रक्रिया के रूप में अनुवाद सदैव एक आयामी होता हैं। अर्थात् यह स्रोत भाषा (source Language) से लक्ष्य भाषा (Target Language) में सर्दव एक दी गई दिशा में किया जाता है।

उपर्युक्त विचार के आलोक में कैटफर्ड अनुवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं- अनुवाद एक भाषा की मूलपाठ सामग्री तथा (2) समानार्थक। ये दोनों ही अनुवाद के संबंध में व्याख्या की अपेक्षा करती है। इन दोनों में यह तथ्य निहित है कि सामान्य स्थितियों में स्रोत-भाषा के मूलपाठ का हू-ब-हू अनुवाद नहीं किया जा सकता अर्थात् समानार्थक लक्ष्य भाषा का स्थानापन्न (Substitution) नहीं किया जा सकता/हां, एक या अन्य स्तरों पर स्थानापन्न के स्थान पर केवल स्रोत-भाषा सामग्री का लक्ष्य-भाषा मूलपाठ में क्रमण (Transference) संभव हो सकता है। कैटफर्ड के अनुसार मुख्यतः समग्र अनुवाद (total translation) में अर्थ (meaning) महत्वपूर्ण है। वस्तुतः अनुवाद की परिभाषा प्रायः अर्थ के संदर्भ में ही की गई हैं- मौलिक के समान ही तथा वही अर्थ रखने को अनुवाद कहा गया है। अनुवाद-सिद्धांत के लिए अर्थ का सिद्धांत (theory of meaning) निश्चित करना स्पष्ट रूप से आवश्यक है क्योंकि इसके बिना अनुवाद व्यापार के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार नहीं किया जा सकता। कैटफर्ड की मान्यता है कि अर्थ भाषा का गुण-धर्म है। एक स्रोत भाषा मूलपाठ का स्रोत भाषा अर्थ होता है तथा लक्ष्य भाषा मूलपाठ का लक्ष्य भाषा अर्थ होता है। अर्थ को भाषिक रूपों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। व्याकरण तथा शब्दशास्त्र के रूपात्मक (formal) भाषिक एककों के द्वारा प्रविष्ट संबंधों के दो प्रकार हैं- (1) रूपात्मक संबंध, (2) सांदर्भिक संबंध। रूपात्मक संबंधों से तात्पर्य एक रूपात्मक इकाई तथा उसी भाषा में दूसरी के बीच संबंधों से हैं व्याकरण कें संदर्भ में विभिन्न श्रेणियों के एककों के बीच यह संबंध हो सकता है। शब्दशास्त्र के अंतर्गत एक ही शब्दशास्त्रीय समुच्चय में एक शब्दशास्त्रीय इकाई तथा दूसरी के बीच रूपात्मक संबंध हो सकता है। इसके अतिरिक्त, सांदर्भिक संबंधों से अभिप्राय व्याकरणिक या शब्दशास्त्रीय इकाइयों तथा उन स्थितियों के भाषिक तौर पर प्रासंगिक तत्वों के बीच संबंध से है जिनमें कि वे इकाइयां मूलपाठ के रूप में या मूलपाठ में क्रियाशील होती हैं। चूंकि प्रत्येक भाषा रूपात्मक तौर पर अपने ढंग की एक ही होती है तथा अपने सर्वोत्तम रूप में रूपात्मक अनुरूपता एक स्थूल तुल्यता है, अतः स्रोत भाषा इकाइयों तथा लक्ष्य भाषा इकाइयों के रूपात्मक अर्थ प्रायः एकसे नहीं होते।

कैटफोर्ड की अवधारणा के संदर्भ में यह तथ्य सामने आता है कि एक भाषा से दूसरी भाषा में एक सीमित प्रकार का अर्थ अंतरण संभव है, किंतु यह भी समान रूप से स्पष्ट है कि यह वह नहीं है जो समान्यतः अनुवाद का अर्थ होता

है। अनुवाद में स्रोत भाषा अर्थों के लिए लक्ष्य भाषा अर्थों का स्थानापन्न होता है, स्रोत भाषा का लक्ष्य भाषा में अंतरण नहीं। अतः अनुवाद सिद्धांत में इन दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाना चाहिए।

12.3.3 पीटर न्यूमार्क

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मशीन अनुवाद, व्यवहार आधारित अनुवाद, भाषा-वैज्ञानिक अनुवाद, आदि से संबंधित अनुवाद-चिंतकों की अवधारणाओं से अवगत होने के पश्चात् अब हम इसी परम्परा में 1970 के दशक में अपने अनुवाद चिंतन के कारण प्रसिद्ध हुए पीटर न्यमार्क के बारे में चर्चा करेंगे। उनके विचारों से अवगत होने से पहले हम उनके द्वारा रचित अनुवाद संबंधी साहित्य की संक्षिप्त जानकारी हासिल करेंगे। उनके अनुवाद संबंधी ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :-

न्यूमार्क का कृतित्त्व

New mark, Peter, (1969) '*Some Notes on Translation and Translators*', Incorporated Lingnist. Vol. 8 (4) p. 79-85.

New mark, Peter, (1973) '*An Approach to Translation*' Babel. Vol. 19 (1) p.3-19

New mark, Peter, (1976) '*A Tentative Preface to Translation*', The Audio- Visual Language Journal. Vol.14 (3) P.161-69.

New mark, Peter, (1981) *Approaches to Translation*. Oxford : Pergamon Press.

New mark, Peter, (1989) '*Modern Translation Theory*', International Journal of Translation. Vol.1 (1) P.1-11

New mark, Peter, (1987) *A Text book of Translation*, Prentice Hall.

न्यूमार्क का अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

आधुनिक पाश्चात्यअनुवाद-चिंतकों में पीटर न्यमार्क का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने विभिन्न ग्रंथों एवं शोध लेखों में उन्होंने अनुवाद की वास्तविक प्रकृति से संबंधित एवं संतोष जनक कही जा सकने वाली अवधारणा को प्रतिपादित करके अनुवाद चिंतन की परम्परा में सराहनीय योगदान दिया है। इस दिशा में एक चिंतक के रूप में पीटर न्यमार्क की निम्नलिखित बातें अनुवाद के विभिन्न आयामों को विकसित एवं पुष्ट करने में सहायक सिद्ध हुई है :-

- अनुवाद-सिद्धान्त से संबंधित विपुल साहित्य का विस्तृत अध्ययन
- अनुवाद विषय को पढ़ाने का दीर्घकालीन अनुभव
- अनुवादक के रूप में अर्जित विशेषज्ञता

पीटर न्यूमार्क ने सर्वप्रथम 1957 में अनुवाद विषय पर 'जर्नल ऑव एजूकेशन' नामक लेख में अपने विचार प्रस्तुत किए। तत्पश्चात् 1961 में उन्होंने अनुवाद विषय पर लिखना शुरू किया। उन्होंने अनुवाद विषय पर तकनीकी तथा विभिन्न विशेषज्ञताओं वाला पहला पूर्ण कालिक स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम 'हालबोर्न कालेज ऑव लॉ, लैंग्वेज एण्ड कामर्स' में शुरू किया। उन्होंने अपनी कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए सामग्री जुटाने के उद्देश्य से सुप्रसिद्ध अनुवाद-चिंतक नायडा तथा लीपजिग स्कूल से प्रेरणा प्राप्त किया। इसके बाद से ही अनुवाद संबंधी अवधारणा का स्परूप धीरे-धीरे एंक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित होने लगा। इससे पहले अनुवाद संबंधी-अवधारणा का स्वरूप अस्पष्ट एवं अस्थाई होने के साथ-साथ विभिन्न लोगों के सामान्य विचारों, टिप्पणियों, लेखों आदि पर आधारित था।

पीटर न्यूमार्क का मत है कि अनुवाद विषयक कार्य एक ऐसा शैक्षिक कार्य है जो व्यावहारिक अभ्यास पर निर्भर करता है। वास्तव में जो लोग सृजनात्मक लेखन कार्य में सक्षम हैं, वे सृजनात्मक (creative) लेखन कार्य करते है। जो इस कार्य में सक्षम नहीं हैं, वे अनुवाद कार्य करते है और जो अनुवाद कार्य नहीं कर सकते, वे अनुवाद के विषय में लिखते

हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि गोएथे (Goethe) व अन्य कई ऐसे लेखक हुए है जिन्होंने ये तीनों प्रकार के कार्य को एक साथ सम्पन्न करते हुए इस धारणा को मिथ्या साबित किया।

पीटर न्यूमार्क कहते है कि अनुवाद कार्य का व्यावहारिक प्रचलन लगभग 3000 ईसा पूर्व से तथा चिंतन-मनन 50 ईसा पूर्व से होता आ रहा है। सभी विद्वानों के द्वारा किए गए विचार-विमर्श का मुख्य केन्द्र यह रहा है कि अनुवाद शाब्दिक (Literal) होना चाहिए अथवा भावानुवाद (free)। इन दोनों प्रकार के अनुवाद में निरन्तर द्वन्द्व की स्थिति रही है। यह विचार-विमर्श व्यवहार में अनुवाद-कार्य करने वाले विद्वानों के द्वारा लेखों, टिप्पणियों, भूमिकाओं आदि के रूप में किया जाता रहा है। यह वाद-विवाद प्रायः कविता के अनुवाद को लेकर अधिक किया गया है।

न्यूमार्क का मानना है कि 1950 के दशक में बहुत सारी ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हुई जिन्होंने अनुवाद को विकसित करने में भूमिका निभाई :-

(1) अनुवाद अध्ययन ने व्यवसाय का रूप धारण किया

(2) अनुवाद के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर परिषदों की स्थापना की गई

(3) अन्तर्राष्ट्रीय अनुवादक संघ की स्थापना की गई

(4) साहित्यिक अनुवाद की अपेक्षा गैर साहित्यिक विषयों का अनुवाद अधिक किया गया

(5) ग्रंथों एवं पुस्तकों की अपेक्षा रिपोर्टों, दस्तावेजों, लेखों आदि का अनुवाद अधिक किया गया

(6) अधिकतर भाषाओं को एक समान दर्जा दिया गया और

(7) अनुवादकों को विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण देना आरंभ किया गया।

इन सभी कारणों से विश्व स्तर पर अनुवाद विषय का सामाजिक महत्व बढ़ता गया, अनुवादों की संख्या बढ़ती गई और अनुवाद का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया।

पीटर न्यमार्क का मानना है कि इसी दौरान भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन की तुलना में भाषा-विज्ञान विषय एक नए विज्ञान के रूप में उभरकर सामने आया और भाषाओं के लिखित एवं उच्चरित विषय का अनुवाद पर उस समय तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा जब तक कि अर्थ-विज्ञान (Semantics) को अलग नहीं कर दिया गया। जब भाषा को प्रमुख तथा सामाजिक आदान-प्रदान में अर्थ-संप्रेषण तथा व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में देखा जाने लगा, अभी अनुवाद प्रक्रिया को समझने के लिए एक प्रद्वति के रूप में भाषा-विज्ञान बहुत कारगर सिद्ध हुआ। किंतु आज भी अधिकतर भाषा-वैज्ञानिक अनुवाद-सिद्धांत को नजर अंदाज करते हैं, यद्यपि वे भाषा-विज्ञान को अनुवाद-विज्ञान के प्रत्येक पक्ष से संबंधित मानते हैं और अनुवाद को विधिवत सैद्धांतिक रूप से स्थापित करते हैं।

पीटर न्यूमार्क अपनी प्रसिद्ध पुस्तक-'Approaches to Translation' में अनुवाद संबंधी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अनुवाद को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

(1) अर्थकेन्द्रित अनुवाद (Semantic Translation)

(2) संप्रेषण केन्द्रित अनुवाद (Communicative Translation)

न्यूमार्क द्वारा प्रतिपादित अर्थ केन्द्रित तथा प्रचलित शाब्दिक अनुवाद की अवधारणा यद्यपि देखने में एक जैसी लगती है, फिर भी इनमें अंतर है। जहां तक शाब्दिक अनुवाद का प्रश्न है, इसमे (1) पूल पाठ के शब्दों का अर्थ प्रतिपादित किया जाता है, (2) संदर्भ की उपेक्षा की जाती है और (3) मूलपाठ के वाक्यरचना संबंधी नियमों का पालन किया जाता है। इसके विपरीत अर्थकेन्द्रित अनुवाद में (1) संदर्भ की अनदेखी नहीं की जाती, (2) कभी-कभी व्याख्यात्मक भी हो जाता है और (3) मूलपाठ के अर्थ को उद्घाटित किया जाता है। न्यूयार्क के अनुसार अर्थकेन्द्रित अनुवाद में अर्थहानि की संभावना अत्यधिक होती है जबकि संप्रेषण केन्द्रित अनुवाद में अर्थहानि की संभावना नहीं होती, बल्कि उसकी पूर्ति की जाती है जिसके परिणाम स्वरूप अनुवाद स्पष्ट एवं सहज हो जाता है। इसीलिए यह कभी-कभी मूल-रचना से भी

आगे निकल जाता है बशर्ते अनुवादक में सृजनात्मक प्रतिभा हों।

"In semantic Translation, every word Translated represents some loss of meaning. Where word Translated lose no meaning at all."

- Peter Newmark. Approaches to Translation 1981, P. 47

12.3.4 गिडियन टॉरी

बीसवीं शताब्दी के अंत में आने वाले आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक अनुवाद-चिंतकों की श्रंखला में गिडियन टॉरी (Gideon Toury) का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुवाद-अध्ययन के आधुनिक संदर्भ में चिंतन-मनन करते हुए उन्होंने अनेक ग्रंथों के माध्यम से अनुवाद के प्रचलित स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तथा अपनी नयी संकल्पनाओं को सामने लाते हुए अनुवाद के अनेक पक्षों का उद्घाटन किया है। यहां हम उनके द्वारा लिखित ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे :-

गिडियन टॉरी का कृतित्त्व

- Toury, Gideon, (1978) "The Nature and Role of Norms in Literary Translation" in Janes S. Holwes, Lambert and Broeck (eds) Literature and Translation : New Posspectives in Literary studies. Leuven, Belgium : Acco, 83-100.
- Toury, Gideon, (1980) *In Search of a Theory of Translation*. Tel Aviv : The Proter Institute of Poetics and Semiotics.
- Toury, Gideon, (1981) "Translated Literature: System, Norm Performance: Toward a TT-oriented Approach to Literary Translation" in Evan-Zohar and Gideon Tourry (eds) Translation Theory and Intercultural Relations. Poetics Today vol 2 (4) (Summer-Autumn) : 9-29
- Toury, Gideon, (1982) "A Rationale for Descriptive Translation studies" in Andre Lefevere and Kenneth D. Jackson (eds) The Art and Science of Translation. Dispositio 7 (19-21) : 23-40
- Toury, Gideon, (1984) "Translation, Literary Translation and Pseudotranslation" in E. S. Shaffer (eds) Comparative Criticism 6. Combridge : Combridge University Press, 73-85
- Toury, Gideon, (1986) "Translation A Cultural-Semiotic Perspective" in Thomes Sebeok and Paul Bouissac (eds) Dictionary of Semiotics. BerlinèNew Yarkè Amsterdam : Mouton, 1111-24
- Toury, Gideon, (1991) "What are Descriptive Studies in Translation Likely to Yield Aprt from Isolated Description ? in Zwart and Ton Naaijkens (eds) Translation Studies : The State of the art." Amsterdom : Rodopi, 179-192
- Toury, Gideon, (1995) Descriptive Translation Studies and Beyond Amsterdom : John Bengamins.

गिडियन टॉरी का अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण

आधुनिक पाश्चात्त्यअनुवाद-चिंतकों की परम्परा में गिडियन टॉरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके अनुवाद-चिंतन को प्रमुखतः दो काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) 1971 से 1975 तक

(ख) 1976 से वर्तमान तक

प्रथम कालखंड का संबंध 1930 से 1945 के मध्य विदेशी भाषाओं के उपन्यायों का हिब्रू में किए गए अनुवाद को प्रभावित करने वाली सांस्कृतिक परिस्थितियों का विस्तृत समाज- वैज्ञनिक अध्ययन से है। दूसरे कालखंड में 1980 में 'इन सर्च ऑव ए थियेरी ऑव ट्रांसलेशन' शीषर्क से प्रकाशित अनुवाद संबंधी शोध लेखों की श्रृंखला का सारतत्त्व है। इसमें गिडियन टॉरी द्वारा किए गए अध्ययन के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए परिणामों पर आधारित अनुवाद विषयक विस्तृत अवधारणा को विकसित करने का प्रयास किया गया है। टॉरी ने प्रथम शोध-परियोजना अपने समकालीन अनुवाद-चिंतक इतामार इवेन जोहर के साथ मिलकर शुरू की। दूसरी शोध परियोजना के अंतर्गत उन्होंने अपने पूर्ववर्ती अनुवाद-चिंतकों की भिन्न अवधारणा को विकसित किया।

गिडियन टॉरी ने अपने आरम्भिक अध्ययन की शुरूआत तेल अवीव विश्वविद्याय (Tel Aviv University) में एक अन्यबृहत परियोजना- 'दि हिस्ट्री ऑव लिटरेरी ट्रांसलेश इन टू हिब्रू' के अंतर्गत की। इस अध्ययन में उन्होंने प्रन्द्रह वर्षों के दौरान अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिब्रू में किए गये गद्य-साहित्य के अनुवादों का वर्गीकरण किया। उन्होंने एक ऐसा संख्यावाचक डाटा (Statistical data) प्रस्तुत किया जिसमें अनूदित लेखकों की संख्या, उनमें से प्रत्येक की अनूदित पुस्तकों की संख्या, अनुवादकों की संख्या आदि को दर्शाया गया। टॉरी के इस अध्ययन का एक उद्देश्य अनुवाद प्रक्रिया के दौरान लिए जाने वाले विभिन्न वास्तविक निर्णायों की खोज करना था। इसके माध्यम से वे एक ऐसी अनुवाद पद्धति की खोज करना चाहते थे जिससे अनुवाद को प्रभावित करने वाले नियमों-निर्देशों की जानकारी दी जा सके। किंतु विडम्बना यह रही कि टॉरी के अध्ययन के अनुसार भाषा-विज्ञान एवं सौन्दर्य-शास्त्र ने अनुवाद प्रक्रिया में नगण्य भूमिका निभाई। वास्तव में टॉरी ने महसूस किया कि अनुवाद करने के लिए चुनी जाने वाली अधिकतर पुस्तकों का आधार एक विशेष प्रकार की विचार धारा (Ideology) रहा है। सौन्दर्य-शास्त्र की कसौटी के आधार पर पुस्तकों का चुनाव नहीं किया जाता था। इवेन जोहर के सान्निध्य में काम करके टॉरी ने यह पाया कि जिन रचनाओं का चुनाव साहित्यिक कारणों से किया जाता था और जिनके लिए समतुल्य अथवा सममूल्य साहित्यिक औपचारिक आदर्श प्रारूपों की खोंज की जाती थी, वे हिब्रू में अनुवाद की पद्धति में स्थान प्राप्त करती थी और उस पद्धति को एक विशेष स्वरूप प्रदान करती थी। जो भी कृतियाँ हिब्रू में अनूदित कृति के रूप में आती, उन्हें स्रोत भाषा की रचना के अनुवाद के उद्देश्य से आंशिक रूप से भाषा-वैज्ञानिक तथा प्रकार्यात्मक/गत्यात्मक समतुल्यता (functional & dynamic equivalence) के द्वारा प्रस्तुत एवं अंतरित किया जाता था। उन्हें लक्ष्य भाषा की संस्कृति में अनुवाद के रूप में स्वीकार किया जाता था और गलत अनुवाद लक्ष्य भाषा की संस्कृति में नही के बराबर थे। दूसरी ओर स्रोत भाषा के प्रति मूलनिष्ठता में कमी का कारण यह नहीं था कि अनुवादक में स्रोत भाषा की रचना के भीतर परस्पर संबंधों के प्रति उदासीन थे, किंतु उनका मुख्य ध्येय लक्ष्य भाषा की संस्कृति में स्वीकार्य अनुवादों को हासिल करना था।

गिडियन टॉरी अनुवाद संबंधी किसी ऐसे प्रारूप को नहीं मानते जो अनुवाद समतुल्यता की मात्र एक अवधारणा को ही दर्शाते हैं। इसके स्थान पर वे विभिन्न प्रकार के ऐसे सैद्धांतिक आयामों को प्रतिपादित करने का सुझाव देते हैं जिनके द्वारा किसी ऐसी अवधारणा का विकास हो जिसे अनुवाद कहा जा सकें वे मानते हैं कि सभी अनुवादों में कुछ ऐसी विशेषताएं एवं अर्थच्छवियाँ होती हैं जो दूसरे अनुवादों में नहीं पायी जाती और इसलिए एक विशुद्ध एवं सफल आदर्श अनुवाद की अवधारणा की संभावना ही लगभग समाप्त हो जाती है।

12.4 पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतकों की अवधारणा : उपयोगिता/ प्रासंगिकता

12.4.1 यूजीन नायडा

नायडा की अनुवाद संबंधी अवधारणा उपयोगी होने के साथ-साथ अनुवाद की वर्तमान मान्यताओं के संदर्भ में भी काफी प्रासंगिक प्रतीत होती है। चूंकि वे चॉम्स्की से प्रभावित हैं, इसलिए उनकी अवधारणा यह तथ्य उजाकर करती है कि अनुवाद व्यापार में अनुवादक के लिए मात्र दो या दो से अधिक भाषाओं का ज्ञान भी अत्यधिक अपेक्षित है। इसके साथ ही अनुवादक को मूल रचना का वर्णन एवं व्याख्या भी करनी चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे कि चॉम्स्की भाषा-वैज्ञानिक संरचनाओं का वर्णन एवं व्याख्या करते है।

नायडा की अनुवाद दृष्टि अधिकांश अनुवाद-चिंतकों की मान्यताओं से मेल खाने के कारण भी प्रासंगिक प्रतीत होती

है। एक प्रकार से ये प्रचलित मान्यताओं की पुष्टि करती है। नायडा का मानना है कि मौलिक रचना के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ अनुवादक को मूल लेखक की मानसिकता, उसके जीवन-दर्शन, उसकी जीवनानुभूति, उसकी संवेदना आदि से भी पूर्णतया तादात्म्य स्थापित करते हुए, उसे महसूस करते हुए, मूल रचना की कथ्यपरक एवं शैलीपरक विशिष्टताओं को पूर्ण निष्ठा के साथ बिना कोई क्षति पहुंचाए लक्ष्य भाषा में प्रतिस्थापित करे।

नायडा की यह अनुवाद संबंधी अवधारणा और भी उपयोगी एवं व्यावहारिक प्रतीत होती है जब वे कहतें हैं कि जब तक अनुवाद में उपर्युक्त सभी अवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती, तब तक कोई भी अनुवादक न तो मूल सन्देश को ही पकड़ पाएगा और न ही यह जान पाएगा कि वह संदेश किस प्रकार भूमिका निभाता है। अतः नायडा की दृष्टि में अनुवाद एक ऐसा रहस्योद्घाटन है जो मूल संदेश को सबके सामने उजाकर करता है और जो लक्ष्य भाषा में संप्रेषित होकर महत्वपूर्ण कृतिका स्थान प्राप्त करता है।

नायडा की अवधारणा में निहित प्रकार्यात्मक प्रभावसमता (व्यावहारिक मूल्यसमता) को ही इसके उपयोगी एवं प्रासंगिक होने का सबसे बड़ा आधार माना जा सकता है।

12.4.2 जे. सी. कैटफर्ड

1950 के दशक में मशीनी अनुवाद से संबंधित प्रारंभिक अवस्था में किए गए विभिन्न प्रयोगों तथा भाषा-विज्ञान पर विशेष बल दिए जाने के परिणाम स्वरूप पूर्वी यूरोप में अनुवाद अध्ययन का तेजी से विकास हुआ। किंतु यह विषय अंग्रेजी भाषी देशों में बहुत धीमी गति से उभरा। 1965 में कैटफर्ड ने भाषा-वैज्ञानिक अननुवाद्यता (Linguistic Untranslability) की समस्या के विषय में चिंतन-मनन किया और यह कहा कि :-

"In 'Translation , there is substitution of TL (Target Language) Meanings for SL (Source Language) meanings: Not Transfereuce of TL meanings in to the SL. In 'Transference' there is an implantation of SL meanings in to the TL text. These two processes must be clearly differentiated in any theory of Translation.'"

J. C. Catford (1965) A Linguistic Theory of Translation, Landon : Oxford University Press.

कैटफर्ड ने अनुवाद विषय पर यह ग्रंथ लिखकर अंग्रेजी में एक नयी बहस को जन्म दिया। यद्यपि कैटफर्ड की अनुवाद संबंधी अवधारणा भाषा-वैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण है, फिर भी अनुवाद के क्षेत्र में अर्थ प्रधान अवधारणा (sementic) की दृष्टि से यह लोकप्रिय नहीं हो सकी। कैटफर्ड की इस अवधारणा के प्रकाश में आने के पश्चात् अनुवाद में सममूल्यता (equivalence) तथा सांस्कृतिक अननुवाद्यता (cultural untranslability) जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर सार्थक चर्चा का सूत्रपात हुआ।

अपने ग्रंथ- A Linguistic Theory of Trnaslation- की भूमिका में कैटफर्ड कहते है कि आधुनिक विश्व में अनुवाद एक अत्यधिक महत्व का कार्य है और यह भाषा वैज्ञानिकों, व्यवसायिकों एवं अध्यवसायी अनुवाद के, भाषा शिक्षकों के लिए विषयक ग्रंथ का विषय है। इन सब क्षेत्रों में विशेषज्ञों के द्वारा अनुवाद विषयक ग्रंथ एवं लेख लिखे गए हैं। विषय के विद्वान विभिन्न दृष्टि कोणों से इसकी गहराई तक पहुंचे हैं। अनुवाद को एक साहित्यिक कला अथवा परिकलन संयोजना में एक समस्या के रूप में, दूसरे शब्दों में व्यक्त करने की निष्ठा संबंधी समस्याओं के रूप में- कि क्या शब्दों अथवा विचारों का अनुवाद हों, अथवा क्या यांत्रिक अनुवाद में तथा प्रत्यय की मान्यता के लिए मापदण्डों/निर्देशों की स्थापना की जाए, यदि विभिन्न दृष्टिकोणों से इस विषय, विशिष्ट समस्याओं में से किसी से भी संबंधित न होकर 'अनुवाद क्या है' के विश्लेषण से संबंधित है। यह ग्रंथ अनुवाद के विशिष्ट दृष्टांतों का आधार निश्चत करने वाली सामान्य कोटियाँ परस्पर संबंधित हैं। अनुवाद का संबंध भाषा से है, अतः अनुवाद संबंधी विभिन्न पक्षों के विश्लेषण एवं वर्णन में भाषाओं के लिए स्थापित कोटियों का समुचित प्रयोग होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, भाषा का एक सिद्धांत अर्थात् एक सामान्य भाषिक सिद्धांत निश्चित करना अनिवार्य है। इसी दृष्टि से कैटफर्ड ने अपनी मान्यताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अतः उनकी अनुवाद संबंधी अवधारणा अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती है और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है। किंतु इस अवधारणा को अनुवाद के साहित्यिक-सांस्कृतिक संदर्भों में अधिक उपयोगी एवं व्यावहारिक नहीं कहा जा सकता।

12.4.3 पीटर न्यूमार्क

पीटर न्यूमार्क द्वारा प्रतिपादित अनुवाद संबंधी अवधारणा अन्य अनुवाद-चिंतकों की अवधारणों की तुलना में अधिक व्यावहारिक, उपयोगी एवं प्रासंगिक प्रतीत होती है, क्योंकि पीटर न्यूमार्क ने संरचनात्मक भाषा-विज्ञान, प्रभावसमता अथवा समतुल्यता, अर्थ प्रधान, संप्रेषण प्रधान अनुवाद जैसी संकल्पनाओं में परस्पर तालमेल स्थापित करते हुए एक संतुलित अनुवाद पद्धति का आश्रय लेने का सफल प्रयास किया। पीटर न्यूमार्क के पूववर्ती अनुवाद-चिंतकों ने पाठ-भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वाक्य-संरचना के पक्ष से हटकर व्याकरण के पक्ष पर अधिक ध्यान दिया था जिसका न्यूमार्क की अनुवाद संबंधी अवधारणा पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा क्योंकि यह भाषा के प्रयोगात्मक पक्ष से संबंधित है। अनुवाद के संदर्भ में किसी रचना विशेष को उसके संपूर्ण कलेवर में जांचने-परखने, उसका अध्ययन-विश्लेषण करने, तथा उस रचना विशेष के मूल कथ्य/संदेश, रचना-विधान, भंगिमाओं, भाषा-प्रयुक्तिओं आदि को सुनिश्चित करने का पीटर न्यूमार्क द्वारा किया गया प्रयास उनकी अवधारणा का सशक्त पक्ष है।

पीटर न्यूमार्क की अनुवाद-संबंधी अवधारणा की उपयोगिता इस दृष्टि से भी है कि आधुनिक अनुवाद-चिंतकों द्वारा अनुवाद के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को अनुवाद-चिंतक के संदर्भ में अनेदखा किया गया है जबकि न्यूमार्क ने ऐसे पक्षों पर गंभीर चिंतन करते हुए आयाम जोड़े हैं। उदाहरण के लिए शीर्षकों का अनुवाद, रूपकों का अनुवाद, उपमाओं का अनुवाद, संस्थागत शब्दों का अनुवाद, नामवाचक संज्ञाओं का अनुवाद, सांस्कृतिक शब्दों का अनुवाद, समानार्थक शब्दों का अनुवाद आदि अनेक ऐसी समस्याएं हैं जिन पर पीटर न्यूमार्क ने साधिकार चर्चा की है और अनुवाद-चिंतन को नई दिशा दी है। ये सभी अनुवाद की ऐसी महत्वपूर्ण समस्याएं हैं जहां अनेक प्रासंगिक सांदर्भिक तत्वों को अनुवाद-पद्धतियों में से किसी एक का चयन करते समय ध्यान में रखा जाता है।

पीटर न्यूमार्क की अवधारणा की उपयोगिता ऐसे में और भी बढ़ जाती है जबकि अधिकतर भाषा वैज्ञनिकों द्वारा सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद को नजर अंदाज करने की स्थिति में न्यूमार्क ने अनुवाद के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र की ओर ध्यान दिया और अन्य अनुवाद- चिंतकों को यह कहकर प्रेरित किया कि कलात्मक अनुवाद की प्रेरणा किसी कलात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा सम्पन्न अनुवादक से ही प्राप्त हो सकती है- "The inspiration for an artistic translation can only come from an artistic Translator." – Peter Newmark, modern Translation Theory in IJT, 1889, Vol. I, P. 9

12.4.4 गिडियन टॉरी

गिडियन टॉरी की अनुवाद संबंधी अवधारणाओं का अध्ययन करने के बाद यह प्रतीत होता है कि उनके अनुवाद संबंधी शोधकार्य पर रुसी रुपात्मक (Formalist) पद्धति का प्रभाव है। उनकी अवधारणा पर रुपात्मक के साथ-साथ संरचनावादी (Structurist) पूर्ववर्ती चिंतकों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इनमें कुछ ऐसे बिन्दु भी हैं जो उनकी संकल्पनात्मक मान्यता को सीमित करते है।

"Toury's work is based on Russian Formalist conceptual thinking…his theory includes from his formalist and structuralist prede cessors, and as such carries certain absolute notions which limit the coneeptual framwork"

Edwin Gentzler contemporary Translation Theories, Viva Books pase 130.

टॉरी का झुकाव संरचनावाद की ओर दिखाई देता है। यद्यपि बाहर से देखने में वे इस तथ्य को स्वीकार करते हुए नजर आते हैं कि सभी भाषाएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं, फिर भी वे यह सुझाव देते हैं कि भाषाओं का यह आधारभूत अंतर अपने आप में एकीकृत हैं और कारकों/निर्दशों के कारण हम इस रूप को क्रियान्वित नहीं कर सकतें लेकिन सक्षम द्विभाषी वक्ताओं के रूप में हम इसकी अवश्य जानकारी ले सकते हैं।

गिडियन टॉरी अनुवाद संबंधी अवधरणा की उपयोगिता स्रोत भाषा की रचना की संस्कृति कों संचालित करते हैं और सीधे तौर पर अनुवाद प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। टॉरी की अवधारणा के अनेक पक्षों ने अनुवाद संबंधी अध्ययन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :-

(1) अनुवाद में भाषिक-साहित्यिक सममूल्यता के स्तर पर संभावनाएं

(2) अनूदित कृति के संदर्भ में लक्ष्य भाषा की रचना के सांस्कृतिक ताने-बाने के भीतर साहित्यिक प्रवृत्तियों का अवद्यमान होना

(3) किसी मौलिक रचना के संदर्भ में निश्चित पहचान के साथ मौलिक संदेश संबंधित किसी धारणा को अस्थिर करना

(4) स्रोत भाषा की रचना और लक्ष्य भाषा में अनूदित रचना के मध्य सांस्कृतिक स्तर पर अर्थपरक ताने-बाने पे मजबूत करना।

सिद्धान्ततः, अनुवाद-अध्ययन के विद्वान गिडियन टॉरी की अनुवाद संबंधी अवधारणा के संबंध में इसके व्यावहारिक क्रियात्मक पक्ष को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। साथ ही ये विद्वान यह बात भी मानते हैं कि प्रक्रिया के रूप में अनुवाद मूल रचना की संस्कृति की विषयवस्तु को अनूदित संदेशों में संप्रेषित करती है। टॉरी द्वारा लिखित ग्रंथ इन सर्च ऑव ए थियेरी ऑव ट्रांसलेशन की समीक्षा करते हुए वैंड्राउवेरा नामक विद्वान ने कहा है कि स्वयं टॉरी अपनी ही रूपात्मक प्रवृत्तियों को क्रियान्वित करते समय उन्हें नजर अन्दाज करते हुए दिखाई देते हैं। यह उनकी अवधारणाओं की सीमा कही जा सकती है।

गिडियन टॉरी ने अपने अनुवाद-अध्ययन के दौरान अनुवाद के क्षेत्र में प्रचलित स्रोत परक सैद्धांतिक प्रारूपों में जो त्रुटियाँ देखी, उन्हें अपनी अवधारणाओं में दूर करने का प्रयास किया। उनका यह प्रयास रहा है कि उन सभी नियमों की खोज करें और उनके बारे में जानकारी दें जो नियम विभिन्न प्रकार से अनुवाद को प्रभावित करते हैं, जैसे भाषा वैज्ञानिक, साहित्यिक, समाज शास्त्रतीय आदि। इस योगदान को गिडियन टॉरी की अनुवाद-अवधारणा की विशेष उपलब्धि कहा जा सकता है।

12.5 अनुवाद का स्वरूप : अनुवाद चिंतकों की अवधारणाओं के संदर्भ में

12.5.1 यूजीन नायडा

नायडा द्वारा लिखित विभिन्न ग्रंथों में चर्चित अनुवाद संबंधी विभिन्न अवधारणाओं/मान्यताओं को अध्ययन के आलोक में अनुवाद का एक ऐसा स्वाभाविक स्वरूप उभर कर सामने आता है जिसे सर्वमान्य, सर्वग्राह्य एवं सर्वप्रिय कहा जाता सकता है। नायडा के अनुसार अनुवाद के स्वरूप के संदर्भ में कहा जा सकता है कि अनुवाद में दो भाषाओं व संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में संदेश अथवा विचारों के औपचारिक आदान-प्रदान (Formal equivalence) की अपेक्षा व्यावहारिक अथवा प्रकार्यातमक समतुल्यता (functional equivalence) का आदान-प्रदान किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अनुवाद में शाब्दिक अर्थ (Literal meaning) के स्थान पर भावपरक अर्थ (Spontanous meaning) पर निर्भर किया जाना चाहिए। भाषा-वैज्ञानिक शब्दावली में नायडा इसे "syntactic एवं semantic" कहकर पुकारते हैं। उनके स्थानों पर उन्होंने इन दोनों पक्षों के लिए "exact eqnivalence" एवं "dynamic equnivalence" जैसी अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया है। अनुवाद के स्वरूप के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि नायडा इस बात पर अधिक बल देते हैं कि अनुवाद में भाषा "क्या" संप्रेषित करती है, न कि इस पर कि वह 'कैसे' संप्रेषित करती है। अनुवाद के स्वरूप की चर्चा करते हुए नायडा इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि अनूदित रचना को पढ़ने के बाद युगीन सांस्कृतिक परिवेश के पाठक में बिल्कुल वैसी ही प्रतिक्रिया जागृत होनी चाहिए जैसी कि मूल रचना के तत्कालीन परिवेश के पाठक में हुई होगी। यदि संभव नहीं हो पाता है तो ऐसी स्थिति में अनूदित पाठ में यथसंभव परिवर्तन किए जा सकते हैं। नायडा प्रकार्यात्मक समतुल्यता अथवा प्रभावसमता के पक्ष में तर्क दिए हुए कहते हैं कि इस आधार पर अनुवाद करने वाला अनुवादक शब्दानुवाद करने वाले अनुवादक की अपेक्षा कहीं अधिक वफादार होता है। क्योंकि वह मौलिक रचना के संदेश के अर्थ को पूर्णरूपेण एवं संतोषजनक ढंग से ग्रहण करता है।

12.5.2 जे. सी. कैटफर्ड

कैटफर्ड की अनुवाद संबंधी अवधारणाओं का संरचनात्मक भाषा-विज्ञान के संदर्भ मे अध्ययन करने के उपरान्त अनुवाद का एक स्पष्ट स्वरूप उभर कर सामने आता है। किंतु अनुवाद के इस स्वरूप का महत्व केवल संरचनात्मक भाषा-विज्ञान

के परिप्रेक्ष्य में ही है क्योंकि कैटफर्ड के द्वारा प्रतिपादित अनुवाद का स्वरूप भाषा के विभिन्न पक्षों से प्रभावित है। कैटफर्ड के अनुसार अनुवाद में स्रोत भाषा की पाठ सामग्री का लक्ष्य भाषा की समानार्थक पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन मात्र है और सामान्य स्थितियों में स्रोत भाषा की पाठ सामग्री का ज्यों का त्यों अनुवाद लक्ष्य भाषा में नहीं किया जा सकता। वे कहते हैं कि अनुवाद सिद्धांत के अनुसार अनुवाद में स्रोत भाषा के पाठ के अर्थों के लिए लक्ष्य भाषा के पाठ के अर्थों का स्थानापन्न होता है न कि अंतरण।

अनुवाद के स्वरूप के संदर्भ में कैटफर्ड के संरचनात्मक भाषा-विज्ञान की मान्यताओं के अनुसार इसमें भाषा संरचना के विश्लेषणात्मक स्तरों और उन स्तरों की श्रेणियों के अधिक्रम का विशेष महत्व है। कैटफर्ड के अनुसार यदि स्रोत भाषा संरचना के सभी स्तरों का लक्ष्य भाषा के सभी सममूल्य स्तरों से प्रतिस्थापन संभव हो जाए तो इस स्थिति को समग्र अनुवाद (total translation) कहा जाएगा। किंतु दो भाषाओं की व्यवस्थाओं में अनुवाद-तुल्यता अथवा सममूल्यता संभव नहीं होती क्योंकि प्रत्येक भाषा की इकाइयों एवं श्रेणियों की सार्थकता प्रत्येक भाषा के भीतर पारस्परिक संबंधों पर आधारित होती है। कैटफर्ड कहते हैं कि एक भाषा की पाठ्य सामग्री दूसरी भाषा में स्थानान्तरित तो हो सकती है किंतु दोनों भाषाओं में संरचना की समग्रता के स्तर पर सममूल्यता स्थापित नहीं हो सकती है। इसलिए अनुवाद व्यवहार में कोई भी अनुवाद समग्र अनुवाद नहीं होता। इसके विपरीत यदि स्रोत भाषा की संरचना के किसी एक स्तर के स्थान पर लक्ष्य भाषा की संरचना के संवादी स्तर को स्थापित करना संभव हो तो उसे प्रतिबंधित अनुवाद (Restricted Translation) कहा जाएगा। इस प्रकार के अनुवाद में चार स्थितियाँ हो सकती हैं :-

(1) स्वानिमिक अनुवाद की स्थिति

(2) लेखकीय अनुवाद की स्थिति

(3) व्याकरणिक अनुवाद की स्थिति

(4) शब्दकोशीय अनुवाद की स्थिति

स्वानिमिक अनुवाद की स्थिति का संबंध केवल उच्चारण से है जिसमें स्रोत भाषा की स्वनिम व्यवस्था के स्थान पर लक्ष्य भाषा की स्वनिम व्यवस्था प्रयुक्त होती है। ऐसी स्थिति में प्रायः व्याकरण एवं शब्दकोश प्रभावित नहीं होते। इसका कारण स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की स्वनिम लक्षणों वाली स्वानिमिक इकाइयाँ होती है। लेखकीय अनुवाद की स्थिति के अंतर्गत किसी लिपि के चिन्हों की केवल आकृति से है, न कि उच्चारण से। किसी एक लिपि के चिन्हों का किसी अन्य लिपि के समान या लगभग चिन्हों से प्रतिस्थापन करने की प्रक्रिया को ही लेखकीय अनुवाद कहा जाता है। व्याकरणिक अनुवाद की स्थिति में स्रोत भाषा की व्याकरणिक (grammatical) इकाइयों के लिए लक्ष्य भाषा की समानार्थक (equivalent) इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, किंतु शब्दकोश स्रोत भाषा का ही रहता है। शब्दकोशीय अनुवाद की स्थिति में स्रोत भाषा के शब्दकोश के स्थान पर लक्ष्य भाषा का शब्दकोश आ जाता है, परन्तु व्याकरण स्रोत भाषा का ही रहता है। इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि संरचनात्मक भाषा-विज्ञान की मान्यताओं के आलोक में अनुवाद सिद्धांत का यह स्वरूप महत्वपूर्ण है।

12.5.5 पीटर न्यूमार्क

पीटर न्यूमार्क के द्वारा लिखे गए विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन-विश्लेषण करने के बाद हमारे सामने अनुवाद का एक ऐसा स्वरूप उभर कर सामने आता है जिसे हम व्यावहारिक, सहज और स्पष्ट स्वरूप कह सकते हैं। भाषा-विज्ञान से प्रभावित होने पर भी पीटर न्यूमार्क पूर्णरूपेण उस पर निर्भर नहीं करते, बल्कि इस बात का प्रयास करते हैं कि सामान्य व्यक्ति को भी अनुवाद का स्वरूप स्पष्टतया समझ में आए। अपने द्वारा प्रतिपादित अनुवाद चिंतन के माध्यम से न्यूमार्क एक संतुलित दृष्टिकोण पर आधारित अनुवाद का स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करते है। सर्वप्रथम वे अनुवाद कार्य के लिए प्रमुखतः दो पद्धतियों पर बल देते हैं :-

(क) पहले प्रकार की पद्धति में शब्दानुवाद न करके मूल लेखक के स्तर पर अनुवाद किया जाता है और अनुवादक एवं पाठक दोनों ही मूल लेखक की मानसिकता, दृष्टिकोण एवं संवेदना के अनुकूल अनुवाद को अपनाते हैं।

(ख) दूसरे प्रकार का पद्धति में भावानुवाद न करके लक्ष्य भाषा के पाठक की बोधगम्यता, बौद्धिक स्तर, ज्ञान, सांस्कृतिक परिवेश आदि के अनुसार किया जाता है।

इन दोनों अनुवाद-पद्धतियों मे से किसी एक का चुनाव इस बात पर निर्भर करता है कि मूल कृति किस प्रकार की है। पीटर न्यूमार्क का मत है कि अनुवाद को स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अंतरित करने की एक सहज एवं सरल प्रक्रिया कहा जा सकता है बशर्ते स्रोत भाषा की रचना की संपूर्ण एवं पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो तथा सांस्कृतिक स्तर पर दोनों में समानता हो। न्यूमार्क मानते हैं कि जब अनुभूति एवं विचारों का वर्णन किया जाता है तो अनुवाद एक उलझा हुआ औपचारिक एवं बनावटी काम हो जाता है, क्योंकि अनुवादक अस्थायी तौर पर मूल लेखक अत्यधिक प्रभावित हो जाता है।

"When feelings and thoughts are described, translation becomes complex sophisticated and even artificial since the translator is temporarily, simulating the author of the original."

(- Peter Newmark, 'Modern Translation Theory in International Jouuanal of Translation. 1989, vol. 1, Page4)

पीटर न्यूमार्क के अनुसार अनुवाद का स्वरूप का आधार यह भी है कि किसी भी रचना के संदर्भ में अनुवाद किस चीज का किया जा रहा है- इस रचना से ध्वनित होने वाले अर्थ का अथवा उस रचना में निहित मूल संदेश का। बाद की स्थिति में अनुवादक को लक्ष्य भाषा के पाठक की बोधगम्यता एवं अन्य स्तरों को ध्यान में रखते हुए अनुवाद- कार्य में प्रवृत्त होना पड़ता है। लक्ष्य भाषा के पाठक के स्तर की दृष्टि से यह तथ्य महत्वपूर्ण है क्योंकि अनुवाद पढ़ने के लिए किया जाता है।

पीटर न्यूमार्क द्वारा अनुवाद संबंधी अवधारणाओं पर आधारित अनुवाद के स्वरूप को दो अन्य पद्धतियों पर प्रकाश डालते हैं जो कि निम्नलिखित है :-

(क) अर्थकेन्द्रित अनुवाद

(ख) संप्रेषण प्रधान अनुवाद

संप्रेषण प्रधान अनुवाद दूसरे पाठक पर लगभग वही प्रभाव डालता है जो कि मूल रचना के पाठक पर। इसके विपरीत अर्थ केन्द्रित अनुवाद लक्ष्य भाषा के शब्द प्रधान एवं अर्थ प्रधान संरचनाओं के अनुपात में स्रोत भाषा के सही सांदर्भिक अर्थ को संप्रेषित करता है। वस्तुतः सिद्धांत के संदर्भ में इन दोनों प्रणालियों में काफी फर्क है। संप्रेषण केन्द्रित अनुवाद केवल पाठक को ध्यान में रखकर किया जाता है और इसका सांस्कृतिक परिवेश लक्ष्य भाषा की संस्कृति होता है। इस प्रकार के अनुवाद में किसी प्रकार की कठिनाई अथवा क्लिष्टता नहीं हाती । यह केन्द्रित अनुवाद अर्थ केन्द्रित अनुवाद की तुलना में अधिक स्पष्ट, प्रत्यक्ष, सरल, सहज व बोधगम्य होता है और लक्ष्य भाषा के प्रचलित मुहावरे व भाषा-प्रयुक्ति के अनुकूल होता है। अर्थ केन्द्रित अनुवाद में असहजता, दुर्बोधता एवं जटिलता होती है- "Generally, a communicative Translation is likely to bo smoother, simpler, clearer, more direct...confirming to a particular register of language"

(- Peter Neqmark, Approaches to Translation, P.39)

अर्थ केन्द्रित अनुवाद में अनुवाद की इकाई का आकार छोटा होता है, स्रोत भाषा पाठ के रूप पक्ष से संबंधित विशेषताओं तथा लाक्षणिक प्रयोग की विशेषताओं को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है। इस अनुवाद का पाठक भी एक ही होता है और वह है स्वयं लेखक। इस अनुवाद में अधिक सूक्ष्मता पैनापन और व्यापकता मौजूद रहती है। इन दोनों प्रकार के अनुवाद में अन्तर यह है कि अर्थ केन्द्रित अनुवाद, अनुवाद प्रतीत होता है जबकि संप्रेषण केन्द्रित अनुवाद स्वतंत्र लेखन जैसा प्रतीत होता है।

12.5.4 गिडियन टॉरी

गिडियन टॉरी की अनुवाद संबंधी अवधारणाओं एवं उनकी उपयोगिता के बारे में जानने के बाद अब हम इन अवधारणाओं के आलोक में अनुवाद के स्वरूप पर विचार करेंगे। टॉरी ने अपनी आवधारणाओं में ऐसी आदर्श पद्धतियाँ अपनाने पर बल दिया है जिनमें स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति के लिए लक्ष्य भाषा में गत्यात्मक समतुल्यता (dynamic equivalent) का प्रयोग किया जाए। टॉरी के अनुसार समतुल्यता की भाषा वैज्ञानिक परिभाषाओं पर उपर्युक्त अवधारणाओं के भारी पड़ने के बावजूद भी वे स्रोत भाषा से प्रभावित है (Toury, In Searchof Theory of Translation, 39-40) इन जैसी अन्य सभी अवधारणाओं के अनुसार यह कहा जा सकता हैं कि लक्ष्य भाषा में अनूदित रचना की सफलता इस बात से आंकी जाती है कि उसमें स्रोत भाषा के साथ संवादिता (Correspondence) का स्तर क्या है। यह कार्य स्रोत भाषा के प्रासंगिक प्रकार्यात्मक भाषा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक तत्वों का पुनर्सृजन करने से संभव हो सकता है।

अनुवाद के स्वरूप के संदर्भ में गिडियन टॉरी का मानना है कि अनुवाद व्यापार में परम्परागत रूप से जिन चीजों की आवश्यकता होती है, उनका निर्धारण स्रोत भाषा के अनुसार किया जाता है और उन्हीं को आदर्श प्रारूप मान लिया जाता है। टॉरी की अवधारणा उन अवधारणाओं के विपरीत है जो किसी एक एकीकृत एवं अमूर्त पहचान (unified and abstract identity) अथवा समान निष्पादन (equal performance) के सही अर्थ निरूपण (interpretation) पर आधारित है। टॉरी के अनुवाद संबंधी स्वरूप का प्रारूप इस तथ्य पर आधारित है कि दो भाषाओं में सरंचनात्मक भेद होता है। प्रत्येक भाषिक व्यवस्था और/अथवा पाठ परम्परा संरचना, भाषा-व्यवहार के नियम आदि के परिप्रेक्ष्य में अन्य भाषिक व्यवस्था पाठ परम्परा से अलग होती है।

टॉरी द्वारा प्रतिपादित अनुवाद के स्वरूप के संदर्भ में कहा जा सकता है कि एक ओर लक्ष्य भाषा में संपूर्ण स्वीकार्यता तथा दूसरी ओर स्रोत भाषा के पर्याप्त गुणों की अभीष्टता पर निर्भर नहीं करते और वे अनुवाद को दोनों के बीच की चीज मानते हैं। टॉरी का मानना है कि कोई भी अनुवाद लक्ष्य भाषा में पूर्णतया स्वीकार्य नहीं होता क्योंकि यह पाठक को सदैव अनेक प्रकार की नयी-नयी जानकारियों और रूपों से अवगत कराएगा और उस पद्धति/व्यवस्था के स्वरूप को बदल देगा। कोई भी अनुवाद पूर्णतया मूल पाठ के अभीष्ट गुणों से युक्त नहीं होता, क्योंकि सांस्कृतिक तत्व मूल पाठ संरचना में अन्तरण (Shifts) के कारण बनते हैं। कोई भी अनूदित रचना लक्ष्य भाषा की संस्कृति में स्वीकार्य पाठ के सदंर्भ में मूल रचना के स्थान पर उसकी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में ही जानी-पहचानी जाएगी।

टॉरी की अनुवाद संबंधी अवधारणाओं पर आधारित अनुवाद के स्वरूप की यह विशेष्ता है कि अनूदित रचनाओं के अपने भीतरी सांस्कृतिक-भाषित परिवेश/संदर्भ का विश्लेषण करने से ही अनुवाद प्रक्रिया को समझा जा सकता है। अनुवादों की अपनी कोई निश्चित पहचान नहीं होती, क्योंकि अनुवादों की पहचान एक के बजाय अनेक हो सकती हैं और यह उन तत्वों पर निर्भर करता है जो किसी विशेष समय पर निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

12.6 सारांश

पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतक संबंधी प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा है कि पाश्चात्त्य अनुवाद चिंतन की एक लम्बी परम्परा है जिसमें अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान देकर इसे सुदृढ़ बनाया है और अनुवाद अध्ययन के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया है और पुष्ट किया है। इस विकास क्रम को प्रमुखतया दो भागों में विभाजित किया गया है- बीसवीं शताब्दी का पूर्वाध और उत्तरार्ध। पहले भाग में रोमन युग, पुनर्जागरण युग, रोमांटिक युग, विक्टोरियन युग के अनुवाद चिंतकों तथा दूसरे भाग में मशीन अनुवाद, व्यवहार आधारित अनुवाद भाषा वैज्ञानिक अनुवाद, शैली विज्ञान अनुवाद, संरचनावादी अनुवाद, रूपात्मक अनुवाद, संकेत वैज्ञानिक अनुवाद आदि से संबंधित अनुवाद चिंतकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में निर्धारित अनुवाद चिंतकों में से - यूजीन नायडा, जे. सी. कैटफड, पीटर न्यूमार्क और गिडियन टॉरी- के कृतित्त्व, अनुवाद संबंधी दृष्टिकोण, अनुवाद संबंधी अवधारणाओं की उपयोगिता एवं प्रासंगिकता, अनुवाद का स्वरूप आदि से संबंधित जानकारी आपको दी गई है। नायडा की अनुवाद दृष्टि प्राचीन प्रासंगिकता, अनुवाद

का स्वरूप आदि से संबंधित जानकारी आपको दी गई है। नायडा की अनुवाद दृष्टि प्राचीन पाठ के अनुवाद कार्य की समस्याओं से अधिक बधी हुई है। अतः इनके अनुवाद चिंतन में व्याकरण का साथ-साथ प्रकार्यात्मक मूल्यसमता पर अधिक बल दिया गया है। कैटफर्ड की अनुवाद-दृष्टि भाषा-संरचना, भाषा शैली, भाषा माध्यम, भाषा-प्रतीक और भाषा पाठ आदि से संबंधित है। इन सबका आधार संरचनावादी भाषा विज्ञान की मान्यताएं हैं। पीटर न्यूमार्क की अनुवाद दृष्टि आधुनिक एवं वैविध्यपूर्ण भाषा भेदों के अनुवाद संबंधी समस्याओं से संबंधित है। उन्होंने अर्थ केन्द्रित अनुवाद और संप्रेषण केंद्रित अनुवाद पर अधिक ध्यान दिया है। गिडियन टॉरी की अनुवाद दृष्टि केवल स्रोत भाषा के पर्याप्त गुणों की अभीष्टता और लक्ष्य भाषा में संपूर्ण स्वीकार्यता पर निर्भर करती है।

इन सभी अनुवाद चिंतकों के द्वारा प्रतिपादित अनुवाद संबंधी अवधारणाओं की उपयोगिता निर्विवाद है और वर्तमान अनुवाद अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। इनसे संबंधित अनुवाद का स्वरूप निर्धारित करने के उद्देश्य से भी इनका अत्यधिक महत्व है। इस इकाई में प्रस्तुत अनुवाद चिंतन एवं चिंतकों के बारे में जानकारी निश्चित रूप से आपके लिए अनुवाद के विभिन्न पक्षों एवं समस्याओं कें संदर्भ में सहायक सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

12.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. (क) नायडा के अनुसार अनुवादक को मूल लेखक के साथ किस प्रकार तादात्म्य स्थापित करना चाहिए ?

   (ख) नायडा की दृष्टि में अनुवाद किस प्रकार का रहस्योद्घाटन है ?

   (ग) नायडा की अनुवाद संबंधी अवधारणा के उपयोगी होने का मुख्य कारण क्या है ?

2. कैटफर्ड ने अपने ग्रंथ ए लिंग्विस्टिक थियरी ऑव ट्रांस्लेशन में अनुवाद संबंधी किन महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया ?

3. पीटर न्यूमार्क की अनुवाद संबंधी अवधारणा किन कारणों से उपयोगी कही जा सकती है ?

4. गिडियन टॉरी द्वारा अनुवाद चिंतन में दिए गए योगदान को आप एक विशेष उपलब्धि कैसे मानते हैं ?

5. नायडा के अनुसार व्यापार में भाषाओं एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान किस प्रकार किया जाना चाहिए ?

6. कैटफर्ड के अनुसार प्रतिबन्धित अनुवाद किसे कहा जाता है ?

12.8 शब्दावली

अनुप्रयुक्त- Applied

भाषा-विज्ञान- Linguistics

द्विभाषी- Bilingual

परिवृत्ति-अनुसंकेतिक- Shift

अनुसंकेतिक- Coded

संप्रेषणात्मक- Communicative

संकल्पना- Concept

विसंकेतिक- Decoded

व्युत्पन्न- Derived

रूपात्मक- Formal

संरचनात्मक- Structuralist

स्वनविज्ञान- Phonetics

संकेत विज्ञान- Semetics

शब्दशास्त्र- Lexis

निष्पादन- Performance

स्वनप्रक्रिया विज्ञान- Phonology

अनुक्रम- Sequence

प्रतिस्थापित- Substituted

अंतरित- Transferred

लिप्यंकन- Transcription

लिप्यंतरण- Transliteration

अननुवाद्यता- Untranslability

प्रारूप- Model

संदर्भगत- Referential

पाठ- Text

समतुल्यता- Equivalence

प्रकार्यात्मक- Functional

शब्दानुगामी- Word-for-word (Literal)

अर्थनिरूपण- Interpretation

अनुसृजन- Transcreation

अनुकृति- Imitation

अनुक्रिया- Response

भावानुवाद- Free Translation

गत्यात्मक- Dynamic

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Gentzler, Edwin. (ed), 1993, *Contemporary Translation Theories,* New York : Routledge.
2. Kelly, L. G., 1979, *The True Interpreter : A History of Translation Theory and Practice in the West*. Oxford: Black well.

3. Steiner, George, 1975, *After Babel : Aspects of Language and Translation*. Oxford: Oxford University Press.

4. Venuti, Lawrence, 1998, *The Translator's Invisibility : A History of Translation*. London: Routledge.

5. Venuti, Lawrence, 2000. *Translation Studies Reader*. London: Routledge

6. Herwans, Theo (ed.), 1985, *The Manipulation of Literature*. New York : St. Martins Press.

7. Bassnett, Susan, 1980, *Translation Studies*. London : Methuen.

8. Bassnett, Susan & Trivedi Harish (ed.), 1999, *Post-Colonial Translation : Theory and Practice*. London : Ruotledge.

इकाई 13 पाश्चात्य अनुवाद चिन्तक (2)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 रचनाकार अनुवादक एवं अनुवाद चिंतक

13.2.1 वाल्टर बेंयामिन (Walter Benjamin)

13.2.2 एज़रा पाउण्ड (Ezra Pound)

13.2.3 ब्लादीमीर नोबाकोव (Vladimir Nobakov)

13.3 जार्ज स्टेनर (George Steiner) का अनुवाद चिंतन

13.4 इटामर इवेन ज़ोहर (Itamar even zohar) का अनुवाद सिद्धान्त

13.5 एन्द्रे लेफेवेयर (Andre Lefevere) का अनुवाद चिंतन

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- जार्ज स्टेनर के अनुवाद चिंतन से परिचित हो सकेंगे
- इटामर इवेन जोहर के अनुवाद सिद्धान्त को समझ सकेंगे
- एन्द्रे लेफेवेयर के अनुवाद सम्बन्धी सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे
- रचनाकार अनुवाद चिन्तकों के विचारों से परिचित हो सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने यूजीन नायडा, जे.सी.कैटफर्ड, न्यूमार्क एवं टोरी के अनुवाद चिन्तन का अध्ययन किया है। पाश्चात्य अनुवाद चिन्तकों का परिचय इतने से ही पूर्ण नहीं होता इसलिए प्रस्तुत इकाई में पाश्चात्य अनुवाद चिन्तन के विस्तृत परिप्रेक्ष्य से आपका परिचय कराने का प्रयास किया जाए। अनुवाद चिंतकों के साथ-साथ उन रचनाकारों तथा अनुवादकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिन्होंने अनुवाद प्रक्रिया के दौरान अनुवाद के व्यावहारिक अनुभव को सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान किया। आप जानते ही हैं कि स्वयं यूजीन नाइडा के अनुवाद सिद्धान्त उनके बाइबिल के अनुवाद से निर्मित हुए हैं। पाश्चात्य अनुवाद चिंतन का फलक बहुत व्यापक है उसका पूरा परिचय देना न तो यहाँ संभव है न ही अभीष्ट। किन्तु उसके प्रतिनिधि चरित्र से परिचित होना अनुवाद अध्ययन के विद्यार्थी के रूप में हमारे लिए आवश्यक है। इस प्रतिनिधित्वपरक दृष्टिकोण को ही ध्यान में रखते हुए ही यहाँ जार्जस्टेनर, जोहर तथा लेफेवेयर के अनुवाद सिद्धान्तों पर विचार करना आवश्यक समझा गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन विचारकों ने अनुवाद चिंतन के अलग-अलग पक्षों पर बल दिया है और उनके अलग-अलग सिद्धान्त निर्मित किए। इसी प्रकार वाल्टर बेंयामिन, एजरापाउण्ड तथा ब्लादीमीर नोबोकोव के सिद्धान्त व्यावहारिक अनुवाद प्रक्रिया से उत्पन्न होने के बावजूद कम

महत्वपूर्ण नहीं है। अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में इनके विचारों का महत्व असंदिग्ध तो है ही इनके विचारों से परिचित होना आवश्यक भी है। रचनाकार अनुवादक होने के नाते इनकी सैद्धान्तिक स्थापनाओं की व्यावहारिक अनुवाद कार्य में भी बहुत उपयोगिता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस इकाई में उनके विषय में भी जानकारी देना आवश्यक समझा गया है। वैसे अन्य कई महत्वपूर्ण अनुवाद चिंतक भी हैं जिनसे परिचित होना जरूरी है। हर चयन की सीमा भी होती है और उसका औचित्य भी। इसलिए इन चिंतकों पर विचार किया जा रहा है।

13.2 रचनाकार अनुवादक एवं अनुवाद चिन्तक

जिस प्रकार रचनाकार से रचना प्रक्रिया और रचनात्मकता का विश्लेषण और मूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं की जाती और आलोचक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह रचना का अनुशीलन और विश्लेषण करें तथा उसकी उपयोगिता, प्रासंगिकता का निरुपण करते हुए रचना का मूल्यांकन करें। उसी प्रकार अनुवादक से भी यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह अनुवाद सिद्धान्त का निरुपण करें। किन्तु रचनाकारों ने भी न केवल अपनी रचना अपितु अन्य रचनाकारों की रचनाओं का विश्लेषण, अनुशीलन तथा मूल्यांकन किया और उसे अत्यधिक विश्वसनीय भी माना गया। टी.एस.एलियट ने इसे वर्कशॉप क्रिटिसिज्म' (कार्यशाला आलोचना) कहा। इसी तरह से कहा जा सकता है कि रचनाकार-अनुवादकों का अनुवाद चिंतन उनके व्यावहारिक अनुवाद के अनुभव पर आधारित होने के कारण उनके सिद्धान्तों की व्यावहारिकता का पक्ष ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि कोई भी सिद्धान्त व्यवहार से असंपृक्त नहीं होता किन्तु यह प्रक्रिया दोनों स्तरों पर चलती है। सिद्धान्त निरुपण के बाद उसके अनुरूप व्यावहारिक अनुवाद ताकि व्यावहारिक अनुवाद प्रक्रिया के द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों तथा अपनाई गई रणनीतियों के अनुरूप सिद्धान्त निरुपण, यहाँ हम ऐसे तीन साहित्यकार अनुवादकों के अनुवाद सम्बन्धी चिंतन की चर्चा करेंगे जिनका अनुवाद अध्ययन के विकास में व्यापक एवं दूरगामी प्रभाव पड़ा।

13.2.1 वाल्टर बेंयामिन (Walter Benjamin)

प्रसिद्ध जर्मन आलोचक एवं विचारक वाल्टर बेंयामिन (1892-1940) मार्क्सवादी साहित्य चिंतन से गहरे जुड़े थे। उनकी रचनाएँ Illuminations (1961) तथा Reflections (1979) निबंध संग्रहों में संकलित हैं। वाल्टर बेंयामिन के अनुवाद सम्बन्धी विचारों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है उनका सुप्रसिद्ध निबंध The Task of Translator : An Introduction to the Translation of Baudelaire's Tableaux Parisians 1923 में लिखित इस निबंध का परिप्रेक्ष्य बादलेयर की रचनाओं के अनुवाद से है जहाँ वे अनुवाद के सन्दर्भ में कई महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाते हैं। इनमें रचना की ऐतिहासिकता 'The Age of its fame' और इतिहास में इसका अधिग्रहण (reception) तो महत्वपूर्ण है ही। साथ ही रचना का उत्तरजीवन अनुवाद के माध्यम से ही संभव होता है। इसे वाल्टर बेंयामिन 'After Life' कहते हैं। बाल्टर बेंयामिन में अनुवाद कार्य के महत्वपूर्ण प्रेयोजन और उद्देश्य पर भी विचार किया है। वे यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या अनुवाद उन पाठकों के लिए किया जाता है जो मूल भाषा से परिचित नहीं है? इसके बावजूद वे यह कहना नहीं भूलते कि अन्तस्थ कार्य करने के अभीष्ट को लेकर किया जाने वाला कोई भी अनुवाद और कुछ नहीं सिर्फ सूचना का ही अन्तरण करता है जो अनावश्यक है। तब भला इस समस्या का समाधान क्या है? बेंयामिन के अनुसार अनुवाद एक माध्यम है और इस माध्यम का उपयोग बेहतर ढंग से करने के लिए मूल पाठ की ओर देखना ही होगा।

बेंयामिन ने अनुवादक की स्वतंत्रता (Freedom) और मूल पाठ के प्रति निष्ठा (Fidelity) के प्रश्न को भी उठाया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'Freedom' और (Fidelity) के ये प्रश्न अनुवाद सिद्धान्त के मूलभूत प्रश्न हैं। वे कहते हैं कि अनुवाद में निष्ठा एवं स्वतंत्रता के पारंपरिक रूप से परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ मानी जाती रही है। इसकी गहरी व्याख्या दोनों को जोड़ने का उपक्रम भी नहीं करेगी। वस्तुतः यह अन्य किसी भी औचित्य को नकार देती है क्योंकि हम जिसे स्वतंत्रता कहते हैं वही आशय या अर्थ ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं रह जाता। (The Translation Studies Reader Edited by Lawrence Venuti, Routledge, Reprint 2001. P. 23)

बेंयामिन ने शुद्ध भाषा के प्रश्न को भी उठाया है। उनके अनुसार शुद्ध भाषा के लिए ही स्वतंत्र अनुवाद अपनी भाषा पर निर्भर करता है। अनुवाद का यह कार्य है कि वह अपनी भाषा को उस शुद्ध भाषा से मुक्त करे जो दूसरी भाषा

के अधीन है। वह उस भाषा को अनुवाद और पुनःसृजन के कार्य के माध्यम से भाषा को दासता की जकड़न से मुक्त करें। 'जॉक देरीदाने भी बेंयामिन का पुनर्पाठ कर अनुवाद की पुनर्जीवन प्रदान करने वाली भूमिका का रेखांकन किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि अनुवाद सम्बन्धी ये विचार समकालीन अनुवाद चिन्तन के लिए भी अत्यन्त प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हैं। जब बेंयामिन यह कहते हैं कि अनुवाद का कार्य इच्छित या वांछित प्रभाव उत्पन्न करना है तब वे अनुवाद के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण चिन्तन की ही बात नहीं करते अपितु नितान्त समसामायिक अनुवाद चिन्तन के अनुरूप ही उनका चिंतन प्रतीत होता है। इस दृष्टिकोण से बेंयामिन के अनुवाद चिन्तन का न केवल ऐतिहासिक महत्व है अपितु उनकी समकालीन प्रासंगिकता भी है।

13.2.2 एज़रा पाउण्ड (Ezra Pound)

एज़रा पाउण्ड (1885-1972) प्रमुख कवि आलोचक अमरीकी कवि आलोचक होने के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण अनुवादक और अनुवाद सिद्धान्तकार भी थे। वे बिम्बवाद के प्रबल पक्षधर और प्रचारक बन गए तथा उनका प्रभाव अनेक रचनाकारों पर पड़ा। उन्होंने टी.एस. एलियट की प्रसिद्ध कविता 'Waste land' का सम्पादन किया। Homage to sextus Propertius (1919) तथा Hugh Selwyn Mauberley (1920) तथा The cantos उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

एज़रा पाउण्ड का अनुवाद चिन्तन उनके रचनात्मक कार्यों तथा अनुवादों के माध्यम से व्यक्त होता है। इस सन्दर्भ में उनके निबंध संग्रह Literary Essays (1918) का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जिसके संस्करण 1920 और 1935 में भी आए। उनके अनुसार रचनाकार की स्वायत्तता के दो रूप होते हैं। यह अनुवाद के स्वरूप में परिणत होता है। तथा अनुवादक की ये भूमिकाएँ व्याख्याकार और सहचर की होती हैं। इन दोनों ही भूमिकाओं के अनुरूप अनुवाद भी व्याख्यात्मक Interpretative Translation' या साहचार्य सहयात्रा (Accomarment) हो जाता है।

गाइडो (Guido) के अनुवाद की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि मूल इटली से अंग्रेजी में अनुवाद की प्रक्रिया में वह वास्तव में सर्वथा एक नई कृति बन जाती हे। पूर्ववर्ती रचनाकारों की भाषा को समझे बिना भाषिक हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। साहित्यिक कृतियों के अनुवाद की सीमाओं को रेखांकित करते हुए निष्कर्षात्मक रूप में पाउण्ड कहते हैं कि "अन्ततः अनुवादक भाषिक रूप से आलसी पाठ के लिए सबकुछ तैयार कर प्रस्तुत कर पाने में पूर्णतः अक्षम ही रहता है। वह यह तो बता सकता है कि खजाना कहाँ है, कौन-सी भाषा पाठक पढ़े इसका सुझाव भी वह दे सकता है और वह उस विद्यार्थी को सामग्री प्रदान कर मदद भी कर सकता है जिसे पढ़ने की जल्दी है पर उसके पास भाषा व्यवस्था है और मूल पाठ को भी प्रदत्त सामग्री के साथ पढ़ने की क्षमता है।'

(वही, पृ. 33,)

इसे ही एज़रा पाउण्ड व्याख्यात्मक अनुवाद कहते हैं। दूसरे प्रकार से उनका अभिप्राय एक नई रचना करने से है जहाँ अनुवादक एक नई ही कविता रच देता है। वे स्वयं मानते हैं कि यह मूलरचना की परिधि में आएगी।

एज़रा पाउण्ड का अनुवाद चिन्तन साहित्यिक अनुवाद की समस्याओं के आलोक में निर्मित हुआ है। इसीलिए साहित्यिक रचनाओं के अनुवाद के सन्दर्भ में उनका यह मत महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन रचनाओं के अनुवाद के माध्यम से हम उनके एक मूल्य को भी सुरक्षित करते है। यह बात उन्होंने इटली रचना के सन्दर्भ में कही पर इसे सभी रचनाओं पर लागू किया जा सकता है। अनुवाद चिंतक लारेंस वेनुटी ने एज़रापाउण्ड के अनुवाद सम्बन्धी योगदान का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है- "पाउण्ड के मानदण्ड आधुनिकतावादी हैं। उनमें प्रत्यक्षवाद तथा भाषिक संक्षेपण जैसे दार्शनिक और भाषिक मूल्य शामिल है।" (वही पृ.12)

13.2.3 ब्लादीमीर नोबाकोव (Vladimir Nabokov)

ब्लादीमीर नाबोकोव की ख्याति उपन्यासकार के रूप में रही है। बहुचर्चित 'लोलिता' नामक रूसी भाषा में लिखे उपन्यास को नोबल पुरस्कार मिला था। इनकी यह रचना अपनी कथा वस्तु एवं विन्यास के कारण अत्यंत चर्चित रही। रूस में जन्में इस उपन्यासकार एवं आलोचक को अपना देश रूस छोड़कर 1951 में आना पड़ा। इनकी प्रमुख कृतियां हैं-

King, Qieen, knave (1928)The gift (1938), Lolita (1955), Pale Fire (1962), Ada (1969) तथा एलेक्जेण्डर पुश्किन की रचना 'Eugene Quegin' का चार खण्डों में अनुवाद एवं आलोचनात्मक टिप्पणी (1964)।

नाबाकोव के अनुवाद सम्बन्धी विचारों का पता उनके पुश्किन के अनुवादों के माध्यम से ही चलता है। नाबाकोव पुश्किन की महत्वपूर्ण रचना के अंग्रेजी अनुवाद की प्रक्रिया की चर्चा के माध्यम से अनुवाद की समस्याओं पर बड़ी गंभीरता से विचार करते हैं। प्रायः अनुवाद या अनूदित कृतियों की समीक्षाओं में समीक्षक अनुवाद की प्रशंसा करते हुए यह लिखते हैं कि अनुवाद को सहजता से पढ़ा जा सकता है। उनके ही शब्दों में ''अनुवाद'' का समीक्षक अनुवाद की प्रशंसा करते हुए उसे 'पठनीय' बता देता है, वह समीक्षक जिसे मूल कृति का न तो कोई ज्ञान है न ही कभी होगा जब तक वह विशेष अध्ययन न करे।'' (Problems of Translation : 'onegin' in English)

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पठनीयता, अनुवाद की सहजता उसकी गुणवता मान ली जाती है जो कि अनुचित है क्योंकि यह मूलरचना के साथ कितना तादात्म्य रखती है, यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है। अनुवाद में Fidelity मूल पाठ के प्रति अनुवादक की निष्ठा की ओर संकेत करते हुए वे इस बहस को केन्द्र मेंरखते हैं कि अनुवादक की स्वतंत्रता सीमित है। कहना न होगा कि अनुवादक की दृश्यता या अदृश्यता की बात हो या मूल पाठ के प्रति निष्ठा दोनों ही मामलों में अनुवादक की भूमिका तथा उसकी सीमा का रेखांकन होता है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Invisibility of Translator' में Lawarence Venuti अनुवादक की सक्रिय और दृश्य भूमिका की चर्चा करते हुए उसके अनुवाद कर्म में प्रत्यक्ष भूमिका का रेखांकन करते है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनुवाद कार्य के दौरान अनुवादक सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों अथवा अपनी रुचि एवं समझ के अनुसार मूल रचना एवं अर्थ निर्धारण की छूट ले सकता है। इसके माध्यम से वह मूल पाठ की पुनर्रचना करता है।

यहाँ हम पूर्वोलिखित वाल्टर बेंयामिन के अनुवाद सिद्धान्तों की चर्चा करें तो यह तुलना की जा सकती है कि नाबाकोव के विपरीत बेंयामिन के मत में अनुवाद रचना को नया जीवनदान देता है। यह After life (जीवन के बाद) की स्थिति अनुवाद के माध्यम से किसी रचना को मिलती है। जॉक दरीदा वाल्टर बेंयामिन के पुनर्पाठ ने अनुवाद के महत्त्व का नया आयाम खोल दिया। अब वह संप्रेषण का एक माध्यम ही नहीं अपितु निरन्तरता का वाहक भी बन गया।

(Jacques Derrida, Des Tours the Babel, in J. Grahamed. defference in translation, I thaca, NY. cornell University Press, 1985)

सूजन बेसनेट इसका उल्लेख करती हुई कहती हैं कि अनुवाद किसी रचना की जीवन्तता सुनिश्चित करता है। अनुवाद प्रभावशाली ढंग से रचना का पुनर्जीवन बन जाता है। वस्तुतः किसी अन्य भाषा में वह एक 'नई कृति' बन जाता है। (Translation Studies, London New York, Routledge, Reprint 2002, Page 9)

किन्तु जिसे अक्षरशः अनुवाद कहा जाता है और प्रायः जिसकी आलोचना भी की जाती है कि वह मूल कृति के शब्दों तक सीमित होता है उसके अर्थ, आशय या भाव उसमें सुरक्षित नहीं रहते उस प्रकार के अक्षरशः अनुवाद या शब्दानुवाद का पक्ष लेते हुए नाबाकोव यह स्पष्ट करते हैं कि शब्दानुवाद या 'Literalism' को गलत ढंग से पेश किया जाता है। वास्तव में जिस अर्थ क्षरण या भाव के विलोप की बात अनुवाद में कही जाती है वह वास्तव में यदि अनुवाद में नहीं आ पाती और अच्छे अनुवादक से भरसक प्रयत्न के बाद भी नहीं आ पाती तो इसकी खोज कहीं मूल रचना में ही करनी चाहिए और उसकी शिकायत मूल रचना से ही करनी चाहिए, मूल रचनाकार से ही करनी चाहिए न कि अनुवादक से। वे कहते हैं कि शब्द अनुवाद से मेरा अभिप्राय 'पूर्णतः सही होने से है। यदि इस प्रकार की शुद्धता की परिणति कभी इस रूप में विचित्र रूपकात्मक भाव से इस तरह के मुहावरे में व्यक्त हो कि 'शब्दों' ने भाव को या आत्मा को नष्ट कर दिया है तब केवल एक ही कार्य समझा जा सकता है कि या तो मूल (कृति) शब्दों में या उसकी आत्मा में ही कोई खोट रही होगी और वस्तुतः इससे अनुवादक का कोई सरोकार नहीं।

'I take literalism to mean "absolute accuracy". If such accuracy sometimes result in the strange allegonic sence suggested now the Phrase" the letter has kild the spint only one reason can be imagined: There must have been somthing wrong either with the original letter or with the

original spirit, and this is not really a translation concern," (Venuti, Lawerencc, the Translation studies Reads, London and New York, Routledge, Reprist 2001, P. &; citedon)

शब्दानुवाद की पूर्णतः वकालत करने का अभिप्राय यह नहीं है कि वे अर्थ की व्याख्या पर बल नहीं देते अपितु वे अर्थ स्पष्ट करने के लिए अनुवादक से अपेक्षा करते हैं कि शब्दकोशीय अर्थ में वह पाद टिप्पणी दें जिसे न टीका और शाश्वतता या निरन्तरता (commentary and eternity) के बीच अनुवाद के विस्तार के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। इसलिए वे अनुवादक से यह अपेक्षा भी करते हें कि 'जो व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति को किसी अन्य भाषा में व्यक्त करना चाहता है। उसें केवल यह करना होगा कि वह सम्पूर्ण कृति को पूर्णतः शुद्ध रुप में पुनः प्रस्तुत करें, सिर्फ़ कृति या पाठ को ही पुनः प्रस्तुत करें और कुछ नहीं। वे यह भी मानते हैं कि शब्दानुवाद और कुछ नहीं बस एक पुनरुक्ति है क्योंकि पूर्णतः कोई अनुवाद नहीं होता या तो वह अनुकरण होता है, अभिग्रहण या ग्रहण (Adaptation) अथवा एक पैरोडी होती है।

इस प्रकार नाबाकोव अनुवाद के एक मूलभूत और महत्वपूर्ण मुद्दे की न केवल व्याख्या करते हैं अपितु उसकी अवधारणा भी स्पष्ट करते हैं और अनुवाद में शब्दानुवाद और Literalism को लेकर बनी अनेक भ्रांतियों का निराकरण भी करते हैं। निश्चय ही अनुवाद-अध्ययन में नाबाकोव के विचार बहुत उपयोगी है।

13.3 जार्ज स्टेनर (George Steiner) का अनुवाद चिंतन

जार्ज स्टेनर अनुवाद चिंतन के क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। 1975 में प्रकाशित उनकी रचना After Babel : Aspects of Language and Translation, (Oxford University Press Oxford) ने अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान मानी जाती है। इसके पहले 1967 में प्रकाशित उनकी कृति Languag and silence : Essays on language, Literature and the Inhuman (New York, Atheneum) ने विचारकों का ध्यान उनके चिन्तन की ओर आकृष्ट किया था। इसके प्रकाशन के साथ जार्ज स्टेनर ने अनुवाद अध्ययन में हार्मोनिटिक मोशन (Hermeneutic Motion) नामक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इसका हिन्दी पर्याय हो सकता है - व्याख्यात्मक पद्धति'। Hermeneutic शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः ग्रीक शब्द (क्रिया पद) 'Hermeneuein' से मानी जाती है जिसका अर्थ है to interpret अर्थात् व्याख्या करना। पहले इसका प्रयोग केवल बाइबिल की व्याख्या के लिए ही किया जाता था किन्तु आगे चलकर इसका प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा। अनुवाद अध्येता जर्मी मुण्डे प्रयोग का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसके प्रयोग का पता जर्मन स्वच्छन्दतावादियों (Romantic) 'ksyjesdj (Sehleiermacher 1768-1838) तथा डिल्थे (Dilthey 1833-1911) के यहाँ चलता है। इसकी व्याख्या करते हुए वे आगे कहते हैं कि एक ऐसा सिद्धान्त, पद्धति या प्रक्रिया कही जा सकती है जिसमें हर प्रकार की रचना की व्याख्या शामिल है जिसका उद्देश्य पाठ (या रचना) के अर्थ की खोज करना है। (The Routledge companion to Translation studies. (Ed. Jeremy munday) New York, Routledge, 2009, P.195)

स्वयं जार्ज स्टेनर द्वारा लिखति 'The hermeneutic Motion' नामक निबंध में इस सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन तो मिलता ही है। इसके विभिन्न कारकों सोपानों तथा प्रक्रियाओं का भी पता चलता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि स्टेनर के इस सिद्धान्त का सम्बन्ध जर्मन स्वच्छन्तावादियों से तो है ही अरस्तू के 'पोयटिक्स' (Poetics) में भी इसके सूत्र खोजे जा सकते हैं। स्वयं स्टेनर इसी निबन्ध में अरस्तू (Aristotle) द्वारा विमर्श (Discousse) के अर्थ में प्रयुक्त शब्द Hermeneia का भी उल्लेख करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि परम्परा से प्राप्त ज्ञान को आधुनिक संदर्भ और परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हुए वे अनुवाद के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

स्टेनर के ही शब्दों में Hermene utic Motion अर्थानुसंधान अनुकूलित अर्थान्तरण की प्रक्रिया है। (The Hermene utic Motion, the act of eliatation and appropriation Transefer of meaning is fourfold) (उपर्युक्तनिबन्धा) यह चार स्तरीय क्रम इस प्रकार है। विंश्वास या निष्ठा (Trust) Aggression (आक्रोश) In Carporation (समावेश) तथा Satisfaction (संतुष्टि) नामक चार चरणों से गुजरकर किसी रचना के अनुवाद की प्रक्रिया पूरी होती है। निष्कर्षात्मक ढंग से दूसरे शब्दों में वे इन प्रक्रियाओं को Hermeneutic of turst, of Penetration, of

embodiment and of restitution भी कहते हें अर्थात् अनुवाद प्रक्रिया के इन चरणों 'में' विश्वास, प्रवेश, रूपान्तरण तथा पुनर्स्थापन भी कहा जा सकता है। अब इन चरणों को समझने की जरूरत है।

बिना संश्लिष्ट विवेचन किए साधारण शब्दों में इसे किस रूप में समझा जाय यह जरूरी है। 'Trust' से स्टेनर का आशय क्या है? जब वे कहते हें कि अनुवादक जब किसी रचना का अनुवाद करने बैठता है त बवह यह मानकर चलता है कि इसका कुछ न कुछ तो अर्थ अवश्य होगा और उस अर्थ को अन्य भाषा में व्यक्त करने वाला कोई न कोई समतुल्य भी होगा। यह विश्वास ही अनुवादक का पहला सोपान है। किन्तु 'विश्वास' भी न तो अंतिम होता है न ही निरापद। उसकी भी परीक्षा करने की आवश्यकता होती है। मूल पाठ के अनुवाद की शुरुआत करते समय उसे लगता है (कुछ न कुछ तो उसका अर्थ अवश्य होगा) लेकिन क्रमशः उसका विश्वास क्षीण होने लगता है और त बवह अपने आपको बहुत दयनीय स्थिति में पाता है और उसको लगता है 'Nothing is there' (कुछ भी नहीं है)। और अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि किसी भी चीज का, किसी का भी कोई भी अर्थ हो सकता है। (He may find that anything or almost anything can mean everything) और अन्ततः वे एक काल्पनिक स्थिति के बारे में सोचते हुए लिखते हैं कि शब्द किसी दिन 'अर्थ वहन करने के बोझ' (The burden of having to mean) से मुक्त हो जाएंगे और पत्थरों की भांति वे शून्य और अपने आपमें खोए हुए रह जाएंगे। तब आखिर स्टेनर कहना क्या चाहते हैं? वे कहना चाहते हैं कि अनुवाद के आरंभ में जो हम मूलरचना के प्रति विश्वास उत्पन्न कर उसके एक पूर्ण प्रदत्त अर्थ को मान बैठते हैं उसकी पुनर्परीक्षा करते रहना चाहिए।

दूसरा सोपान है आक्रोश/आक्रमण (Aggression) की इसे ही स्टेनर (Penetration भी कहते हैं। हेडेगर का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि बोध (Comprehension) ही रचना का अनुवाद हे। कोई चीज है क्योंकि वह है (The thing there' 'The thing that is because it is there) यह दार्शनिक सी प्रतीत होने वाली बात तभी प्रामाणिक हो सकती है जब स्टेनर के अनुसार उसका बोध हो उसका अनुवाद हो। सेंट जेरोम (St. Jerome) का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि अर्थ की वापसी अनुवादक के द्वारा ही संभव है। यह Penetration आखिर है क्या? स्टेनर के अनुसार हम एक कोड को तोड़ते हैं उसका विश्लेषण और विच्छेदन करते हैं, उसकी कपाल क्रिया कर उसकी खोल को मरोड़ देते हैं और उसकी बाहरी परतों को खरोच देते हें तब जाकर मूल और अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है। तब लगता है कि अनुवादक ने किला फतह कर लिया है।

पर क्या ऐसा वास्तव में हो पाता है ? शायद नहीं। तभी अनुवादक का तीसरा सोपान शुरू होता है। यह समावेशी है। इसे Incorportation तथा embodiment दोनों ही शब्दों से जार्ज स्टेनर संबोधित करते हैं। यही वह चरण है जिसमें जब अर्थ और रुप दोनों को ही अनुवादक आयातित करता है। उसे साक्षात रूप में प्रॅस्तुत करता है। लेकिन जैसा स्टेनर ने कहा यह शून्य तो उत्पन्न नहीं होता। इसके लिए अनुवादक को घरेलू कारण का सहारा लेना पड़ता है लेकिन अनूदित भाषा या लक्ष्य भाषा में तो पहले से ही बहुत सा गर्दोगुबार है, उसमें तो अनुवाद और मूल की भाषिक इकाइयों, रूपों, प्रारूपों से सब कुछ अटा पड़ा है? तब अनुवादक उसका आत्मसातीकरण या प्राकृतिकरण (Naturalisation) करने लगता हे किन्तु स्टेनर मानते हैं कि कितना भी यह प्रयास किया जाय आयात की प्रक्रिया देसी संरचना (अनुवादक की भाषा की संरचना भी हम इसे कह सकते हैं) को या तो पुनर्निदिष्ट करेगी या पूरी देशी संरचना को ही बदल देगी। (But what ever the degree of naturalization, the act of imprtation can potation, dislocate or relocate the whole of the native structure)। एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात स्टेनर यह बताते हैं कि अनुवाद कार्य बढ़ते जाने से अनूदित भाषा एक समय 'विदेशी तत्व' को स्वीकार करने से इनकार कर देती है तब यह 'embodiment' एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया बन जाता है।

प्रश्न उठता है फिर इसका निदान क्या है? स्टेनर के अनुसार Hermenutic Motion की प्रक्रिया तीन चरणों तक अपूर्ण ही रहती है और इस अपूर्णता के कारण ही वह खतरनाक भी होती है। यह चौथी क्रिया ही 'Piston-stroke' है जो चक्र को पूरी करती है। यह क्रिया है। निश्चय ही यह चरण संतुलन स्थापित करनेवाला चरण है। अनुवाद पूरी प्रक्रिया में इस चरण में अभीष्ट अर्थ प्रदान करने के संतोष का अनुभव करता है। निश्चय ही इस प्रक्रिया में क्षति या टूटन का भय भी रहता है। पवित्र ग्रंथों या धर्मग्रंथें के अनुवाद में अर्थान्तरण की समस्या तो रहती ही है किन्तु इस सबके

बावजूद अनूदित कृति समृद्ध ही होती है। यह Reciporcity या पारस्परिकता ही अनूदित कृति को उन्नत बनाती है। स्टेनर मानते हैं कि इस प्रक्रिया के 'Fiedlity' द्वारा ही या अनुवादक की निष्ठा को सही अर्थ में समझा जा सकता है। वे अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में Fielity को लेकर हो रही बहस में एक नया आयाम भी जोड़ते हैं और वह है 'Fidelity' नैतिक होने के साथ-साथ बल्कि उससे ज्यादा आर्थिक है। यह लेवी स्ट्रास (Levi-strauss) के उस मॉडल पर आधारित है जिसमें वे मानते हैं कि सामाजिक संरचनाएं एक गतिशील संतुलन (Dynamic equilibrium) शब्दों, स्त्रियों और भौतिक वस्तुओं के विनिमय से स्थापित करती हैं। स्टेनर मानते हैं स्रोत भाषा और ग्राहक की भाषा यानी लक्ष्य भाषा के बीच भी अर्थादिका ऐसा ही विनिमय होता है। इस प्रकार संयोजन या व्याख्या के रूप में Hermeneutics या Hermeneutic Motion की इस प्रक्रिया के उत्पाद के रूप में अनुवाद संभव होता है।

जैसा पहले उल्लेख किया गया इस अवधारणा के संबंध में श्लेयरमाशर हेडेगर, डिल्थी तथा जॉक दरीदा तक ने अपने मत व्यक्त किए हैं। श्लेयरमाशर ने सरोकारों का परिचय देते हुए 1813 में दिए अपने व्याख्यान में कहा कि अनुवादक को अपनी भाषा में अपने स्वाभाविक रूप में उसे यह प्रस्तुत करना होता है कि उसने बाहरी होने के बावजूद भिन्न भाषा में प्रस्तुत जीवन जगत को अपने निजी ढंग से प्रस्तुत किया है। दरीदा के विचारों को तो संशय का संयोजन भी कहा जा सकता है। उन्होंने हेडेगर की निष्पत्तियों की तो व्याख्या की ही बेंयामिन की भी पुर्न व्याख्या की।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक पुराने सूत्रको नई अर्थवेत्ता प्रदान करते हुए जार्ज स्टेनर ने अनुवाद चिन्तन में न केवल एक नया आयाम जोड़ा अपितु उसे एक नया सिद्धान्त भी दिया जिसे हम हार्मेनियटिक मोशन के नाम से जानते हैं। इसमें अनुवाद प्रक्रिया का बहुत विश्वसनीय निरूपण किया गया है। निश्चय ही अनुवाद अध्ययन में जार्ज स्टेनर का महत्व निर्विवाद और अक्षुण्ण है।

13.4 इटामर इवेन जोहर (Itamar Even Zohar) का अनुवाद सिद्धान्त

तेल अवीवी इटामर इवेन ज़ोहर का महत्व अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में बहुव्यवस्था सिद्धान्त के साथ जोड़ा जाता है। यद्यपि इस सिद्धान्त के व्याख्याकारों में गिडियन टोरी का नाम भी महत्वपूर्ण है इसके अतिरिक्त बहुव्यवस्था सिद्धान्त के अध्ययन फलक के विस्तार में अन्य सिद्धान्तकारों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है किन्तु जैसा हमने पहले देखा कि सिद्धान्त के प्रारूपकार के रूप में जिस प्रकार जार्ज स्टेनर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है उसी प्रकार बहुव्यवस्था सिद्धान्त के प्रतिपादक के रूप में इटामर इवेन जोहर का नाम ही प्रमुखता से लिया जाता है।

जिस प्रकार स्टेनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अनुवाद के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त के विरुद्ध एक साहित्यिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त के रूप में भाषा नहीं व्याख्या के रूप में अनुवाद के स्वरूप और भूमिका को निदृष्ट करता है उसी प्रकार अनुवाद का बहुव्यवस्था सिद्धान्त भी अनुवाद को केवल भाषिक कार्य तक सीमित करने का विरोध करता है।

वस्तुतः इस सिद्धान्त की प्रस्तावना जोहर इस प्रतिज्ञा से करते हैं कि साहित्यिक इतिहासों में अनूदित कृतियों का जिक्र तक नहीं होता और यदि उल्लेख करना जरूरी ही हो जाय तब इतिहासकार उसे वैयक्तिक प्रयास के रूप में उल्लेखनीय मानता है न कि एक प्रवृत्ति के रूप में, एक स्वतंत्र कृति के रूप में।

इसी विडम्बनात्मक स्थिति से उत्पन्न चेतना के फलस्वरूप अनुवाद का स्थान निर्धारण करने और उसे करने के उपक्रम के रूप में बहुव्यवस्था सिद्धान्त की चर्चा ज़ोहर करते हें। यहाँ उल्लेखनीय हे कि 1920 के दशक में रूसी रूपवाद की जो चर्चा हुई थी उसका मूलाधार ग्रहण करते हुए 1970 के दशक में बहुव्यवस्था के अनुवाद सिद्धान्त के रूप में ज़ोहर ने प्रस्तुत किया। अनुवाद अध्ययन के विद्यार्थी के रूप में यह जानना हमारे लिए रोचक भी है और उपयोगी भी कि (बहुव्यवस्था) में जो सिद्धान्त स्थापित किया था वह आपस में एक दूसरे से संबंधित भी है और एक दूसरे से अंतः क्रिया भी स्थापित करती हैं। यह व्यवस्था साहित्य से लेकर समग्र समाज पर लागू होने के लिए की जाने लगी और व्यवस्थाओं की व्यवस्था से लेकर 'व्यवस्थाओं' के निषेध तक के अर्थ में में इसकी प्रयोग होने लगा। इवेन जोहर के बहुव्यवस्था सिद्धान्त का स्पष्ट परिचय उनके लेख 'The Position of Translated Literature within the Literary poly system' से मिलता है। इसके अतिरिक्त 'paper in historical poetics' तथा 'papers on poetics and semiotics' जैसे शोधों के द्वारा व्यवस्था सम्बन्धी अध्ययन को वे निरन्तर पुष्ट एवं परिवर्धित करते रहे हैं।

वे मानते हैं कि अनूदित रचनाएं साहित्यिक परम्परा के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए भी कि न केवल वे भाषिक स्तर पर ही अपितु चयन के स्तर पर भी अनुवादक की भाषा में अभिव्यक्ति होती है इसलिए वे एक साहित्यिक विधि का भी निर्माण करती है। जोहर के ही शब्दों में, "मैं किसी साहित्यिक बहुव्यवस्था के भीतर एक अविभाज्य व्यवस्था के रूप में ही अनूदित साहित्य को नहीं देखता अपितु उसके अन्तर्गत उसे सर्वाधिक सक्रिय व्यवस्था के रूप में देखता हूँ।" (पूर्वोक्त लेख)

जोहर बहुव्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र और परिधि की भी चर्चा करते हैं तथा 'प्राथमिक' एवं 'द्वितीयक' स्थिति की भी चर्चा करते हैं। अनूदित साहित्य साहित्यिक बहुव्यवस्था में केन्द्रीय स्थिति तब प्राप्त करता है जब वह उस बहुव्यवस्था को रूपाकार देने में सक्रिय भूमिका निभाता है। तब वह आविष्कारक या प्राथमिक (Innovation or Primary) शक्तियों के साथ होता है। इस स्थिति में कहा जा सकता है 'मौलिक' और 'अनूदित' साहित्य के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं किया जा सकता।

जोहर के अनुसार बहुव्यवस्था की गत्यात्मकता ऐसे प्रस्थान बिन्दुओं का निर्माण करती है जिसे ऐतिहासिक क्षण भी कहा जा सकता है और उन ऐतिहासिक क्षणों में स्थापित आदर्श नई पीढ़ी या युवा पीढ़ी के लिए उपयुक्त नहीं रह जाते। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय साहित्यों में भी अनूदित साहित्य कभी-कभी केन्द्रीय स्थिति अर्जित कर लेता है। (पूर्वोक्त)

अनुवादक के सन्दर्भ में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्विरोध का उल्लेख करते हुए जोहर कहते हैं कि 'अनुवादक', जिसके द्वारा नए विचार, नए तत्व, नई विशेषताएं किसी साहित्य में प्रवेश पाती है, वही पारम्परिक भावबोध को सुरक्षित करने का माध्यम बन जाता है। (पूर्वोक्त) (A highly interesting paradomenitests itself here : translation, by which new ideas, items, characteristics can be introduced into a literature, becomes a means to preserve traditional taste. (I bid, translated literature in the poly system in venuti, Lawrence, The Translation Studies Reader, London and New York, Routledge Reprint 2001, P. 195)

मुख्यधारा का साहित्य या केन्द्रीय साहित्य तथा हाशिए का लेखन या परिधि का लेखन अर्थात् केन्द्र और परिधि के बीच निरन्तर तनाव बना रहता है। यह जरूरी नहीं कि अनूदित साहित्य साहित्यिक बहुव्यवस्था में सदैव केन्द्रीय भूमिका में ही रहे या इसके विपरीत उसकी भूमिका सदैव परिधि की ही बनी रहे। उसकी भूमिकाएं बदलती रहती है। इसका कारण यह है कि एक व्यवस्था के रूप में स्वयं अनूदित साहित्य के कई स्तर और भेद होते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए जोहर एक रोचक उदाहरण देते हैं। दोनों विश्व युद्धों के बीच हिब्रू साहित्यिक बहुव्यवस्था में रूसी भाषा से हुए अनुवादों की केन्द्रीय स्थिति हो गई जबकि अंग्रेजी, पोलिश, जर्मन तथा अन्य भाषाओं से अनूदित साहित्य की भूमिका और स्थिति स्वाभाविक रूप से हाशिए की ही रही। इस प्रकार बहुव्यवस्था सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थिति में परिवर्तित भी होती है। और निष्कर्षतः जोहर कहते हैं अनुवाद अब कोई ऐसी चीज नहीं रह गई है जिसकी प्रकृति और सीमा सदैव के लिए निर्धारित कर दी जाय अपितु वह एक ऐसी गतिविधि है जो किसी सांस्कृतिक व्यवस्था के भीतर प्रदत्त सम्बन्धों पर निर्भर है। (Translation is no longer a phenomenon whose nature and borders are given once and for all, but an activity dependent on the relations within a certain cultural system. (Ibid, P. 197)

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि यह अनुवाद चिन्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान विन्दु है। इतना तो तय है कि बहुव्यवस्था का यह सम्पूर्ण सिद्धान्त लक्ष्यभाषा, उसके साहित्य और संस्कृति के आदर्शों या Norms को केन्द्र में रखकर ही निर्मित किया गया है। इस सिद्धान्त का महत्व असंदिग्ध है और फलतः इटामर इवेन जोहर का योगदान भी अनुवाद अध्ययन की दिशा में दूरगामी महत्व का है।

13.5 ऐन्द्रे लेफेवेयर (Andre Lefevere) का अनुवाद चिंतन

अनुवाद अध्ययन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तकार एन्द्रलेफेयर मुख्यतः अध्यापन से जुड़े रहे। बेल्जियम, हांगकांग तथा दक्षिण अफ्रीका में अध्यापन करने के साथ एटेक्सास विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा के प्रोफेसर रहे। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं - Translating Poetry (1975) Translation Literature : The German Tradition (1977), Translation History, Culture (1992), Translation, Rewriting and manipulation of Literray fame (1993) तथा सूजन बेसनेट के साथ संयुक्त रूप से लिखित 'Constricting Culture' (1998)।

लेफेवेयर के अनुवाद सम्बन्धी चिन्तन को जहाँ एक ओर बहुव्यवस्था, सिद्धान्त के विस्तार और उसके पुनर्निधारण की ओर प्रयत्न माना जा सकता है। वहीं दूसरी ओर उन्होंने अनुवादक के मूलभूत सरोकारों और प्रश्नों पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके इन दोनों ही प्रयासों का संक्षिप्त परिचय हम यहाँ प्राप्त करेंगे। ऐन्द्रेलेफेवेयर अनुवाद, आलोचना तथा इतिहास लेखन तीनों को ही 'Refraction' या 'Rewriting' के रूप में व्यक्त करते हैं। अनुवाद इस प्रकार उनके यहाँ आलोचना या इतिहास लेखन के समकक्ष है और वह वास्तव में पुनर्लेखन है यहाँ 'Rewritinғ' या पुनर्लेखन उसी प्रकार न केवल साहित्य सिद्धान्त के निर्माण में अपितु साहित्य के विकास में भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जहाँ एक ओर वे अपने महत्वपूर्ण लेख 'Mother courage's cucumbers : Text, system and refraction in a theory of Literature' में ब्रेश्ट (Brecht) के अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से अनुवाद प्रक्रिया तथा अनुवाद के पाठ के स्वरूप पर चर्चा करते हुए अनुवादक की भूमिका एवं महत्ता की विवेचना करते हैं वहीं दूसरी ओर वे अनुवाद की सैद्धान्तिकी निर्मित करते हुए स्रोतभाषा एवं लक्ष्यभाषा के रिश्तों तथा निष्ठा (Fidelity) जैसे मूलभूत मुद्दों पर भी विचार करते हैं। 'Composing the other' नामक अपने लेख में वे 'Conceptual Grid' तथा 'Textual Grid' जैसी अवधारणाएं प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अनूदित कृतियों के मूल्यांकनपरक पक्ष पर भी उनका विवेचन हमें देखने को मिलता है और अनुवाद के निष्पतिपरक पक्ष पर भी उनका सैद्धान्तिक विवेचन हमारे सामने है। लेफेवेयर साहित्य के प्रति व्यवस्थापरक दृष्टिकोण (systemic approach) उसके स्वच्छन्दतावादी दूष्टिकोण (Romantic Approach) की तुलना में अधिक विश्वसनीय और उपयुक्त है। स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए वे मौलिकता के प्रश्न को भी उठाते हैं। कहना न होगा कि स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन नूतनता (Newness) या मौलिकता का प्रश्न भी उठाता है। स्वयं लेफेवेयर ने अपने उसी लेख में इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया - 'मौलिकता तभी हो सकती है जब रचनाएं लगातार उस परम्परा और परिवेश से अलग रहे जिसमें (और जिसके विरुद्ध) उनकी रचना होती है। (Orginality can only exist if texts are consistently isolated from the tradition and environment in which (against which) they were produced) (I bid, Translation Studies Reader, P. 247)। मौलिकता के इस विरोध का प्रयोजन व्यवस्थापरक दृष्टिकोण (systemic approach to Literature) का समर्थन तथा स्वच्छन्दतावादी साहित्य सद्धिान्त का खण्डन करना है।

एन्द्रेलेफेवेयर ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि 'Fidelity'या मूलपाठ के प्रति निष्ठा का प्रश्न अब महत्वहीन हो गया है। उसका महत्व अभी भी मेडिकल अर्थात् चिकित्सा विज्ञान के पाठ में तो है किन्तु विज्ञापन के क्षेत्र में तो यह प्रतिउत्पादक (Counter productive) की भूमिका निभाएगी। लेफेवेयर यह मानते हैं कि अनुवादक अनुवाद प्रक्रिया के दौरान 'भाषिक कोड' या उसके स्तर तथा किसी शब्द विशेष या मुहावरों की चिन्ता करता है अपितु उसके सामने जो बात महत्वपूर्ण होती है वह है 'Grids'। इसे ही अवधारणात्मक ग्रिड (conceptual Grid) तथा 'पाठपरक' ग्रिड 'Textual Grid' कहते हैं। इनमें से किसी एक को प्राथमिक और द्वितीयक कहना उचित नहीं अपितु वे एक दूसरे से अन्तर्गुथित (Inter twined) हैं। लेफेवेयर यह मानते हैं कि दोनों ही 'विद्युतधाराएं' या 'Grids' समाजीकरण की प्रक्रिया के परिणाम है। एक अन्य महत्वपूर्ण बात वे यह कहते हैं कि उपर्युक्त दोनों 'ग्रिड' के स्तर पर असमानताएं तो आती ही है। दो भाषाओं के स्तर पर भी भिन्नताएं देखी जा सकती है। पश्चिमी संस्कृतियों और भाषाओं से यदि भारतीय या अन्य संस्कृतियों में अनुवाद किया जाता है तो संप्रेषण में बाधा 'conceptual Grid' के रूप में आती है। इसके लिए उन्होंने 'corn Flakes' के, 'Basmati Flakes' के अनुवाद का उदाहरण दिया। इसी प्रकार अरबी भाषा से यदि पश्चिमी 'भाषाओं' में अनुवाद किया जाय तो वह 'Textual Grid' की समस्या होगी जैसी कि 'कसीदा' के अंग्रेजी अनुवाद में देखा जा सकता है।

लेफेवेयर को इस समस्या का समाधान भाषिक स्तर पर नहीं अपितु रचनात्मक स्तर पर दिखाई देता है। इन दोनों ही ग्रिडों पर समस्याएं न केवल अनुवादकों के सामने आती है अपितु रचनाकारों के सामने भी आती है। तब समाधान स्वरूप वे कहते हैं - "मूल लेखक की ही तरह उन्हें भी इन ग्रिडों को अपने ढंग से मोड़ने का प्रयास करना होगा जिससे न केवल संप्रेषण संभव हो जाय अपितु वह रोचक और आकर्षक भी हो।" (Like write of originals, they too have to find ways of manipulating the grids in such a way that communication becomes not only possible, but interesting and attractive) ('Composing the other' in Bassnatt, susan & Trivedi Harish, (ed) Post colonial Translation Theory and Practice, London and New Yark, Rutledge, 1st

edition 1999, P. 77)। लेफेवेयर अनुवाद के क्षेत्र में संस्कृतियों में समानताएं ढूंढने और समतुल्य समानार्थक सांस्कृतिक पदबंध खोजने के बजाए उन संस्कृतियों को उनकी शर्तों पर समझने के लिए हमें सामाजीकरण तथा शिक्षित होने की दिशा में बहुत प्रयास करना होगा। अर्थात् उन संस्कृतियों को निकट से जानना होगा।

ऐसा नहीं है कि लेफेवेयर के अनुवाद सिद्धान्त की सीमाओं को नहीं रेखांकित किया जा सकता। पर यहाँ उद्देश्य उनके विचारों में निहित महत्वपूर्ण विन्दुओं को रेखांकित करने का है। इसलिए अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में एन्द्रेलेफेवेयर के योगदान की निश्चय ही प्रशंसा की जानी चाहिए।

13.6 सारांश

संपूर्ण विवेचन से हमें पता चलता है कि अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में विवेचित सिद्धान्तकारों ने अपने-अपने ढंग से योगदान किया है। बीसवीं शताब्दी का महत्वपूर्ण अनुवाद चिंतन इन विचारकों के विचारों में अनेक स्तरों पर दिखाई देता है। वाल्टर बेंयामिन का अनुवाद चिंतन जहाँ अनूदित कृति के उत्तर जीवन की बात करके उसकी जीवन्तता का महत्व प्रतिपादित करता है और परवर्ती विचारकों को विचार का नया अवसर प्रदान करता है। जहाँ जॉक दरीदा तक उसकी व्याख्या और पुनर्व्याख्या करते हैं, वहीं एजरा पाउण्ड अनुवादक की स्वायत्तता के प्रश्न को उठाते हुए अनुवाद को व्याख्यात्मक (Interpretative) और साहचर्य (accomponing) के रूप में प्रस्तुत कर मूल रचना के साथ उसका संबंध ा स्थापित करते हैं। इसी तरह नाबाकोव अनुवाद में मूलपाठ के प्रतिनिष्ठा (fidelity) के प्रश्न को उठाते हुए उसे पूर्ण शुद्धता (Absolute Accuracy) का पर्याय बताते हैं। उनके अनुसार कोई भी रचना अनुवाद प्रक्रिया में यदि अपना अर्थ खो देती है और यदि वह अनुवादक के प्रयासों के बावजूद होता है तो दोष मूलरचना में ही खोजना चाहिए।

इन साहित्यकार अनुवाद चिंतकों के विपरीत जार्जस्टेनर होर्मेनियटिक मोशन (Hermenevtic Motion) का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। मूलतः ग्रीक दार्शनिक अरस्तू के 'Poetics' से इस परम्परा को ग्रहण करते हुए जर्मन स्वच्छन्दतावदियों (Romantics) शेलर मेकर (schleier makcher) आदि के विचारों से प्रभाव ग्रहण करते हुए वे अनुवाद प्रक्रिया में चार सोपानों की चर्चा करते हैं - विश्वास (Trust), आक्रमण (Aggression) समावेश (In Corporation) या (embodinent) तथा पुनर्स्थापन (reinstitution) जबकि इटामर इवेन जोहर अनुवाद की बहुव्यवस्था (Polysystem) का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। रूसी रूपवाद से प्रेरणा ग्रहणकर साहित्य का वह सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाले जोहर जहाँ एक ओर अनुवाद चिन्तन में भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विपरीत अनुवाद के सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं वहीं वे साहित्य में केन्द्र और परिधि की चर्चा करते हुए यह मानते हैं कि समय और परिस्थिति के अनुरूप साहित्येतिहास में अनूदित कृतियां कभी केन्द्रीय स्थिति में होती हैं तो कभी हाशिए पर चली जाती है। एन्द्रेलेफेवेयर जहाँ एक ओर स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त के विपरीत व्यवस्थापरक उपागम (Systematic Approch) का पक्ष लेते हैं और अनुवाद को पुनर्लेखन या rewriting तक कहना चाहते हैं। वहीं दूसरी ओर वे अनुवाद में आने वाली समस्याओं को Conceptual Grid तथा Textual Grid के रूप में देखते हैं तथा संस्कृतियों के अनुवाद में घरेलू स्तर पर साम्य खोजने की बजाए संस्कृतियों को समझने की वकालत करते हैं।

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अनुवाद के बहुव्यवस्था (poly system) सिद्धान्त का परिचय दीजिए।
2. अनुवाद अध्ययन में जार्जस्टेनर के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. अनुवाद अध्ययन के विकास में एन्द्रेलेफेवेयर की भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. किन्ही दो अनुवाद चिन्तकों के विचारों पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए

   1 वाल्टर बेंयामिन 2 एजरापाउण्ड 3 ब्लादीमीर नोबाकोव

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Baker, Mona, (ed.), 2009, *Encyclopedia of Translation Studies*, London & New York, Routledge reprint.

2. Bassnett, Susan, 2003, *Translation Studies*, Bondonand Saldanha, Gabriela New York, Routledge, reprint.

3. Bassnett, Susan, & Trivedi, Harish, (eds.), 1999, *Post Colonial Translation: Theory and Practice,* New York, Routledge.

4. Munday, Jermey, (ed.), 2009, *The Routledge Companion to Translation Studies*, London and New York, Routledge.

इकाई 14 भारतीय अनुवाद चिन्तक

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भारतीय अनुवाद चिन्तन के प्राचीन सूत्र

14.3 महत्त्वपूर्ण भाष्य ग्रन्थ
- ब्राह्मण ग्रन्थ
- आरण्यक ग्रन्थ
- आरण्यकों के प्रवचनकर्ता
- वेदांग
- निरुक्त की टीकाएँ
- व्युत्पत्ति शास्त्र
- पाणिनि और अष्टाध्यायी
- पतंजलि और महाभाष्य

14.4 प्रसिद्ध भाष्यकार
- स्कन्द स्वामी
- माधव भट्ट
- वेंकट माधव
- धानुष्कयज्वा
- आनन्दतीर्थ
- आत्मानन्द
- सायण

14.5 भारतीय अनुवाद की प्राचीन चिन्तनधारा

14.6 प्राचीन भारत का राज-काज और अनुवाद चिन्तन

14.7 मुगलकालीन अनुवाद चिन्तक

14.8 देशीय अनुवाद चिन्तन की कुछ आन्तरिक धाराएँ

14.9 सारांश

14.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

भारतीय अनुवाद चिन्तक की चर्चा से सम्बन्धित इस इकाई का उद्देश्य है -

- भारतीय अनुवाद चिन्तन के प्राचीन सूत्रों पर विचार करना
- प्राचीन ग्रन्थों के भाष्यों में अनुवाद की प्रतिच्छवि की समीक्षा करना
- अनुवाद की प्राचीन धारणाओं की जानकारी हासिल करना
- मुगलकालीन अनुवाद चिन्तकों के विश्वबन्धुत्व का परिचय पाना, तथा
- भारतीय अनुवाद परम्परा को सही परिप्रेक्ष्य में समझना

14.1 प्रस्तावना

अनुवाद और अनुवाद चिन्तन की किसी भी परम्परा पर बात करते हुए अनुवाद चिन्तकों की धारणाओं के बारे में जानना बहुत जरूरी होता है। सामान्य परिस्थिति में लोग आज अनुवादक और अनुवाद चिन्तक का मूल्यांकन अलग-अलग दृष्टि से करते हैं। पर भारतीय अनुवाद की प्राचीन परम्परा के मद्देनजर ऐसा करना उचित नहीं होगा। इसके कई कारणों में सबसे प्रमुख कारण यह है कि प्राचीन समय में हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों की कुटिया में या गुरु-आश्रमों में वैसे अनुवाद का चलन नहीं था, जैसा हम आज देखते हैं। अनुकथन, पुनर्कथन, भाष्य, टीका, अन्वय, सरलार्थ, विशेषार्थ, प्रतीकार्थ...कई प्रसंगों से उस दौर के चिन्तक अर्थान्वेष किया करते थे। श्रुति-ग्रन्थों की परम्परा से लेकर बाद के दिनों तक की भाषा-पद्धति में हमारे अपने ही ग्रन्थों में इतने परिवर्तन हुए कि हमारे चिन्तकों को उन्हीं से फुरसत नहीं मिली, वे अध्यवसाय छोड़कर अनुवाद पद्धति पर ग्रन्थ कहाँ से लिखते! अनुवाद की उनकी पद्धतियाँ ही उस दौर के अनुवाद चिन्तन की बानगी साबित होती हैं। मुगल सल्तनत से पूर्व भारतीयेतर ग्रन्थों की ओर हमारे प्राचीन चिन्तकों की अनुरक्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वे अपने ही ग्रन्थों और पूर्ववर्ती चिन्तकों के विचारों के भाष्य और टीका में निरन्तर व्यस्त रहे। वस्तुतः ज्ञान-अनुशीलन, चिन्तन-मनन, अध्ययन-अध्यापन, शास्त्र-विमर्श के क्षेत्र में भारत देश पुराकाल से दुनिया का सिरमौर रहा है। हमारे यहाँ मनीषियों का अपना ही चिन्तन-संसार इतना विराट था कि उन्हें अन्यत्र से कुछ उधार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। लोक और शास्त्र दोनों ही दृष्टियों से हम भव्य विरासत के अनुगामी बने रहे हैं। वेद, उपनिषद, संहिता, स्मृति, अर्थशास्त्र, शासन-तन्त्र, औषधि-विज्ञान, गणित, बौद्ध-साहित्य, कामसूत्र, पंचतन्त्र तथा अन्य साहित्यिक कृतियों के अनुवाद के प्रति दुनिया भर के लोगों की अनुरक्ति और प्रशंसा-भाव आज जगजाहिर है। यह दीगर बात है कि आज हमारी ही अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं में इन कालजयी कृतियों का अनुवाद सहजता से उपलब्ध नहीं है। अपनी भाषा में हमारी धरोहरों का अनुवाद करवाकर परराष्ट्र के लोग भले लाभान्वित हो जाएँ, पर भव्य विरासत के वंशजों को कई बार अपनी कंगाली पर आत्मदया की स्थिति इस तरह भी आती है। भयावह स्थिति तो यह है कि हम, भारतवासी दुनिया भर के ग्रन्थों को पढ़ लेने की उत्कण्ठा लिए फिरते हैं, पर अनुवाद की तंगहाली और भाषाई अल्पज्ञता के कारण, आज भी हम अपने देश के सभी भाषाओं की कृतियों को जनसुलभ बनाने में सफल नहीं हुए हैं; और तो और, जिस फारसी दस्तावेजों में मध्यकालीन भारत की सच्ची तस्वीर छिपी हुई है, उसे भी पढ़ पाने में अक्षम हैं।

उल्लेख असंगत न होगा कि प्राचीन काल में भारतीय मनीषा के ध्वजधारियों में कभी खुद को समय का देवता साबित करने अथवा इतिहास की शिला पर अपना नाम खुदवाने की होड़ नहीं लगी रहती थी। लिहाजा अनुवाद की दिशा में उन्होंने जो कुछ किया, वह क्रिया ही अपने आप में एक तर्कसम्पन्न अनुवाद-चिन्तन का उदाहरण है। वेद से वेदान्त तक की समस्त कृतियों के विभिन्न रूपों को देखकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि काल के बीतते क्रम में हमारे पूर्वजों ने अपनी कालजयी कृतियों को समकालीन नागरिकों के लिए बोधगम्य और उपयोगी बनाने के लिए कितने उद्यम किए! विदित है कि उनके वे सारे उद्यम अनुवाद-चिन्तन की दिशा में पथप्रदर्शक आयास साबित हुए। इस तरह हमें यह मानने में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए कि वेदों के पुनर्पाठ, ऋचाओं के अन्वय-विश्लेषण-व्याख्या, निघण्टु, निरुक्त, ब्राह्मण,

आरण्यक, उपनिषद की रचना और बाद के चिन्तकों द्वारा किए गए भाष्यों में अनुवाद की भारतीय परम्परा की प्राचीनता परिलक्षित है; और जब अनुवाद की परम्परा इतनी प्राचीन है, तो जाहिर है कि अनुवाद-चिन्तन की परम्परा भी उतनी ही प्राचीन है। तथ्य है कि पुनर्पाठ, अनुकथन, अनुवचन, अन्वय और भाष्य के उन उद्यमों का उद्देश्य कोई आर्थिक व्यापार नहीं होता था, उसका उद्देश्य विशुद्ध बौद्धिक और ज्ञान का व्यापक प्रचार होता था। उस उद्यम में योगदान देनेवाले सभी मनीषियों को हमें भारतीय अनुवाद के आदिचिन्तकों की तरह देखना चाहिए। इस दिशा में हमारे समस्त उद्यमशील पूर्वज यथेष्ट उदारचेता थे, अधिकतर समय में उनका ध्येय सामूहिक प्रयासों से पुनीत-कार्यों को पूर्णता देना होता था। श्रेय लेने और नामोल्लेख करवाने की कोई व्यग्रता उनमें दिखती नहीं थी, सम्भवतः यही कारण रहा हो कि प्राचीन व्याख्याकारों अथवा भाष्यकारों की कोई व्यवस्थित सूची असानी से उपलब्ध नहीं होती, परवर्ती काल के अन्वेषकों ने इस दिशा में कोई गहन-शोध करने की आवश्यकता भी नहीं महसूस की। फलस्वरूप भारत में पश्चिम की तरह अनुवाद की सैद्धान्तिक अथवा विधिवत अनुवाद की परम्परा प्रखरता से दृष्टिगोचर होती।

इस इकाई में हम यथासूचित चिन्तकों के सम्बन्ध में यत्किंचित जानकारी हासिल करेंगे।

14.2 भारतीय अनुवाद चिन्तन के प्राचीन सूत्र

भारतीय अनुवाद चिन्तन के प्राचीन सूत्र हमें सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। इन ग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों तथा संहिताओं की गद्यात्मक टीकाएँ संकलित हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में ई.पू. 1700-150 का कालखण्ड वैदिककाल माना जाता है, *वेदों* की रचना (ऋग्वेद : ई.पू. 1700-1100, यजुर्वेद : ई.पू. 1400-1000, सामवेद : ई.पू. 1400-1100, अथर्ववेद : ई.पू. 1100-900) इसी अन्तराल में हुई। हड़प्पा संस्कृति के पतन के बाद भारत में आविर्भूत वैदिक सभ्यता की जानकारी का स्रोत वेद ही था।

14.3 महत्त्वपूर्ण भाष्य ग्रन्थ

विदित है कि उत्तर वैदिककाल आते-आते वैदिक संहिताएँ दुर्बोध होने लगीं थीं, वेद-मन्त्रों के अर्थ-ज्ञान विशिष्ट व्यक्तियों तक ही सीमित रह गए थे, लिहाजा जनोपयोग की दृष्टि से उन मन्त्रों की व्याख्या अत्यावश्यक हो गई थी। वैदिक-यज्ञों के कर्मकाण्ड की भी यही स्थिति थी। दीर्घकाल तक यज्ञों का अनुष्ठान कण्ठस्थ मन्त्रों से होता रहा, धीरे-धीरे यज्ञ-विधान जटिल प्रतीत होने लगा, सन्देह की गुंजाईश बढ़ गई। याज्ञिक विसंगतियों के निराकरण हेतु यज्ञवेत्ताओं के गहन विचार-विमर्श से ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रणयन का मार्ग प्रशस्त हुआ। हर समय के साहित्य के मूल में, समकालीन सांस्कृतिक विचारधारा, राजनीतिक और सामाजिक सक्रियता, आस्थाओं, आदर्शों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति अनिवार्यतः रहती है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रणयन की यही पृष्ठभूमि है। अर्थात वेद-मन्त्रों की सुगम व्याख्या, याज्ञिक विधानों के सूक्ष्मतर पहलुओं का ज्ञान और समकालीन वैचारिक आन्दोलन को दिशा देने की भावना मुख्य रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों की पृष्ठभूमि में निहित रही है।

यज्ञों एवं कर्मकाण्डों के विधान और इनकी क्रियाओं को ठीक-ठीक समझने हेतु *ब्राह्मण* ग्रन्थों की रचना हुई। वैदिक संस्कृत में प्रणीत *ब्राह्मण* ग्रन्थ वेद का प्रामाणिक भाष्य है, उनके ही कुछ विशिष्ट अंश *आरण्यक* हैं; जैसे *श्रीमद्-भगवदगीता, महाभारत* का अंश है, पर खास महत्त्व के कारण अलग भी है। फिर *आरण्यक* ग्रन्थों में से भी ब्रह्म विद्या विषयक प्रकरणों को एकत्र कर *उपनिषद* (समीप आकर प्राप्त करना) संज्ञा दी गई। आधुनिक युग के सर्वोत्तम वेदवेत्ता ऋषि दयानन्द ने संहिता ग्रन्थों को *वेद* का आदि भाष्य कहा। *वेद* के द्वितीय खण्ड *यजुर्वेद* का आदि भाष्य दो प्रकार के संहिता ग्रन्थ समूहों पर आधारित है *कृष्ण यजुर्वेद* और *शुक्ल यजुर्वेद*।

ब्राह्मण ग्रन्थ

भारतीय सभ्यता के अति प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना संहिताओं के कर्मकाण्ड की व्याख्या करने के लिए की गई थी। वैदिक वांग्मय के दूसरे हिस्से में देवताओं के यज्ञ के कर्मकाण्डों की गद्यात्मक व्याख्या की गई है, हिन्दू धर्म के पवित्रतम और सर्वोच्च धर्मग्रन्थ *वेदों* की गद्यात्मक व्याख्या वाला वही भाग *ब्राह्मण* है, वैदिक मन्त्रों तथा संहिताओं का गद्यात्मक भाष्य है। पुरातन *ब्राह्मण* में *ऐतरेय, शतपथ, पंचविश, तैतरीय* आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी भाषा वैदिक संस्कृत

है। हर वेद का एक या एक से अधिक ब्राह्मण है, हर वेद की अपनी अलग-अलग शाखा है। वर्तमान समय में आसानी से उपलब्ध ब्राह्मण निम्नलिखित हैं :

ऋग्वेद :

ऐतरेय ब्राह्मण (शाकल शाखा)

कौषीतकि (या शांखायन) ब्राह्मण (बाष्कल शाखा)

सामवेद :

प्रौढ़ (या पंचविंश) ब्राह्मण

षडविंश ब्राह्मण

आर्षेय ब्राह्मण

मन्त्र (या छान्दिज्ञ) ब्राह्मण

जैमिनीय (या तावलकर) ब्राह्मण

यजुर्वेद :

शुक्ल यजुर्वेद :

शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिनि शाखा)

शतपथ ब्राह्मण (काण्व शाखा)

कृष्ण यजुर्वेद :

तैत्तिरीय ब्राह्मण

मैत्रायणी ब्राह्मण

कठ ब्राह्मण

कपिष्ठल ब्राह्मण

अथर्ववेद :

गोपथ ब्राह्मण

आरण्यक ग्रन्थ

वेद के जिस भाग में यज्ञानुष्ठान-पद्धति, याज्ञिक मन्त्र, पदार्थ एवं फलादि में आध्यात्मिकता का संकेत दिया गया है, उसका भाष्य *आरण्यक* हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तरार्द्ध में संकलित अंश आरण्यक ग्रन्थ है। वस्तुतः कर्मकाण्ड के साथ दोनों का सम्बन्ध है, इसलिए ये एक ही परम्परा से अनुस्यूत हैं। राजा जनक द्वारा सर्वश्रेष्ठ तत्ववेत्ता को 100 गाय देने की आख्यायिका *शतपथ ब्राह्मण* में भी है, और *बृहदारण्यक* में भी। अन्तर बस इतना है कि *बृहदारण्यक* में याज्ञवल्क्य के साथ समकालीन तत्वचिन्तकों के दार्शनिक विचार-विमर्श भी शामिल हैं। स्पष्ट है कि आरण्यक भाग ब्राह्मणग्रन्थों पर निर्भर है। अर्थात *ब्राह्मण* ग्रन्थों में उन कर्मकाण्डों का विवेचन हुआ, जिनका विधान गृहस्थ के लिए था, किन्तु वृद्धावस्था में वानप्रस्थ अपनाने पर कर्मकाण्ड के स्थान पर अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती थी, *आरण्यक* उसी की पूर्ति करते हैं। भाषा की दृष्टि से भी *आरण्यक साहित्य* महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इनका प्रणयन वैदिकी और लौकिक संस्कृत की मिश्रित भाषा में हुआ है।

आरण्यकों के प्रवचनकर्ता

अधिकांश आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम भाग हैं, इसलिए कुछ अपवादों के अलावा ब्राह्मणों के प्रवचनकर्ता ही आरण्यकों के प्रवचनकर्ता भी हैं। उदाहरणार्थ, परम्परानुसार *ऐतरेय आरण्यक*, ऐतरेय ब्राह्मण का अन्तिम भाग है, इसलिए ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवक्ता महिदास ऐतरेय को ही *ऐतरेय आरण्यक* (तृतीय *आरण्यक* तक) का प्रवचनकर्ता भी माना जाता है। *ऐतरेय आरण्यक* में इसका उल्लेख मिलता है। *ऐतरेय आरण्यक* के चतुर्थारण्यक के प्रवचनकर्ता आश्वलायन तथा पंचम के शौनक माने जाते हैं। ऐतरेयारण्यक के भाष्य में सायण की भी यही धारणा है।

शांखायन आरण्यक के द्रष्टा का नाम गुणाख्य शांखायन है। इस *आरण्यक* के पन्द्रहवें अध्याय में इसका उल्लेख मिलता है कि कहोल कौषीतकि उनके गुरु थे। सम्पूर्ण *शतपथ ब्राह्मण* के प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं, और *बृहदारण्यक शतपथ ब्राह्मण* के अन्तर्गत ही है, इसलिए *बृहदारण्यक* के प्रवचनकर्ता वे ही माने जाते हैं। सायणाचार्य के अनुसार *तैत्तिरीय आरण्यक* के रूप में प्रख्यात *कृष्णयजुर्वेदीय आरण्यक* के द्रष्टा ऋषि कठ हैं इस प्रकार इसे *काठक आरण्यक* के नाम से जाना जाना चाहिए।

मैत्रायणीय आरण्यक ही *मैत्रायणीय उपनिषद्* नाम से और *सामवेद* के अन्तर्गत *जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण, तलवकार आरण्यक* के नाम से ख्यात है। इसके अन्त में कश्यप से गुप्त लौहित्य तक के ऋषियों के नामों की सुदीर्घ शृंखला दी गई है।

वेदांग

भारतीय अनुवाद परम्परा की प्राचीनता का संकेत हमें *वेदांग* में भी मिलता है। वेदों के अध्ययन के लिए वेदांगों के छह शास्त्र रचे गए। हिन्दू धर्म के छह वेदांग ग्रन्थ हैं *'शिक्षा', 'कल्प', 'व्याकरण', 'ज्योतिष', 'छन्द'* और *'निरुक्त।'* 'छन्द' को वेदों का पैर, 'कल्प' को हाथ, 'ज्योतिष' को नेत्र, 'निरुक्त' को कान, 'शिक्षा' को 'नाक, और 'व्याकरण' को मुख कहा गया है। 'शिक्षा' में वेद मन्त्रों के उच्चारण करने की विधि बताई गई है। 'कल्प' में वेदमन्त्रों के प्रयोग का उपलक्ष्य और उसकी तीन शाखाओं श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्मसूत्र के बारे में बताया गया है। 'व्याकरण' में प्रकृति और प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की सिद्धि और उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की स्थिति का बोध दिया गया है। वेद में प्रयुक्त शब्दों का निश्चयात्मक अर्थ का ज्ञान 'निरुक्त' से होता है। वैदिक यज्ञों और अनुष्ठानों के समय का ज्ञान 'ज्योतिष' वेदांग से होता है। वेदों में प्रयुक्त गायत्री, उष्णिक आदि छन्दों की रचना का ज्ञान 'छन्द' शास्त्र से होता है।

निघण्टु, निरुक्त

उक्त छह वेदांगों में निरुक्त और व्याकरण अनुवाद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसमें मुख्यतः वेदों में आये हुए पुराने शब्दों की शब्द-व्युत्पत्ति का विवेचन है। इसमें शब्दों के अर्थ निकालने के लिए छोटे-छोटे सूत्र और कठिन वैदिक शब्दों का संकलन भी है। प्राचीन वैयाकरण यास्क इसके जनक माने जाते हैं। अपने निरुक्त में यास्क ने पूर्ववर्ती निरुक्तकार औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्यामणिय गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूणि, और्णनाभ, तेटीकि, गालव, स्थौलाष्ठीवि, कौष्टुकि और कात्थक्य के नाम का उल्लेख किया है, यद्यपि उनके ग्रन्थ अब अप्राप्य हैं। अर्थात बारह निरुक्तकारों को यास्क जानते थे, तेरहवें वे स्वयं थे, चौदहवें निरुक्तकार अथर्वपरिशिष्टों में 48वें परिशिष्ट के रचयिता हैं। यह परिशिष्ट निरुक्त निघण्टु स्वरूप है।

वैदिक संज्ञाओं के प्रसिद्ध व्युत्पतिकार एवं वैयाकरण यास्क (ई.पू. दसवीं शताब्दी) का *निरुक्त* तीसरा वेदांग माना जाता है। उन्होंने पहले *निघण्टु* नामक वैदिक शब्दकोश तैयार किया। *निरुक्त* उसी का विश्लेषण है। *निघण्टु* और *निरुक्त* का विषय-साम्य देखकर **सायणाचार्य** ने अपने *ऋग्वेद भाष्य* में *निघण्टु* को ही *निरुक्त* मान लिया।

ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में सायण का कहना है कि अर्थ की जानकारी की दृष्टि से जहाँ स्वतन्त्र रूप से पदों का संग्रह होता है वह *निरुक्त* है (*अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्*)। निरुक्त का प्रयोजन वैदिक शब्दों के दुरूह अर्थ को स्पष्ट करना है। वेदांग-क्रम में यद्यपि निरुक्त का स्थान चौथा है, पर उपयोग की दृष्टि से यह प्रथम स्थान रखता है। निरुक्त की जानकारी के बिना वेद के दुर्गम अर्थ का ज्ञान सम्भव नहीं।

काशिकावृत्ति के अनुसार निरुक्त पाँच प्रकार का होता है वर्णागम (अक्षर बढ़ाना) वर्णविपर्यय (अक्षरों को आगे पीछे करना), वर्णाधिकार (अक्षरों को बदलना), नाश (अक्षरों को छोड़ना) और धातु के किसी एक अर्थ को सिद्ध करना। गौर करने पर ये पाँचो आचरण अनुवाद में प्रयुक्त दिखते हैं।

निरुक्त की टीकाएँ

प्राप्त स्रोतों की जानकारी के अनुसार यास्क रचित उपलब्ध *निरुक्त, निघण्टु* की व्याख्या है। अनेक विद्वानों ने इस विशिष्ट कृति की टीका लिखी है। उपलब्ध टीकाओं में सबसे प्राचीन स्कन्द स्वामी की टीका है। सन् 1952 में गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता से देवराज यज्वा की एक व्याख्या प्रकाशित हुई। सन् 1926 में आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला, पूना से और सन् 1982 में खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई से प्रकाशित दुर्गाचार्य रचित व्याख्या में निरुक्त के प्रायः शब्दों का विवेचन उपलब्ध है।

निरुक्त की टीका, व्याख्या में सत्यव्रत सामश्रमी (बिब्लओथिका, कलकत्ता/सन् 1911) का विवेचन, प्रो. राजवाड़े (सन् 1935) का मराठी अनुवाद, डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर/सन् 1953) का यास्क निर्वचन, मुकुन्द झा बख्शी (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से 1930) की संस्कृत टीका, मिहिरचन्द्र पुष्करणा (पुरुषार्थ पुस्तकमाला कार्यालय, अमृतसर/सन् 1945) की टीका जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हैं।

नैघण्टुक, नैगम और दैवत नाम से तीन काण्डों में विभक्त *निरुक्त* में दो परिशिष्ट के साथ कुल चौदह अध्याय हैं। निघण्टु के लक्षण, उसके शब्दों के अर्थ और व्याख्या, निरुक्त के प्रयोजन, व्याकरण और शब्दशास्त्र के सूक्ष्म विवेचन से परिपूर्ण इस ग्रन्थ जैसा गूढ़ विचार प्राचीन काल में अन्यत्र नहीं देखा गया। यास्क के निरुक्त से यह भी प्रतीत होता है कि उस काल में शब्दशास्त्र पर अनेक मत प्रचलित थे।

भारतीय अनुवाद विधियों के इन प्रारम्भिक रूपों की उपादेयता दुनिया भर के विद्वानों के लिए इतनी अधिक साबित हुई कि बाद के दिनों में अनेक पाश्चात्य विद्वान इस पर मुग्ध हो उठे। रॉथ ने निरुक्त की भूमिका का अनुवाद जर्मन भाषा में किया, फिर प्रो. मैकीशान ने उसका अनुवाद जर्मन से अंग्रेजी में किया।

व्युत्पत्ति शास्त्र

व्युत्पत्तिशास्त्र शब्दों के इतिहास का अध्ययन है, कोई शब्द किसी भाषा में कब, कैसे, किस स्रोत से प्रविष्ट हुआ, उसका स्वरूप और अर्थ समय के साथ किस तरह बदला व्युत्पत्तिशास्त्र में इस बात का स्पष्ट संकेत होता है। कहना चाहिए कि व्युत्पत्तिशास्त्र में शब्द के इतिहास के माध्यम से किसी राष्ट्र, प्रान्त एवं समाज की भाषिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि अभिव्यक्त होती है।

भारतवर्ष में व्युत्पत्तिशास्त्र का उद्भव बहुत प्राचीन है। जब वेद मन्त्रों के अर्थों को समझना सुगम नहीं रहा तब भारतीय मनीषियों द्वारा वेदों के क्लिष्ट शब्दों के संग्रह रूप में *निघण्टु ग्रन्थ* लिखे गए तथा *निघण्टु* ग्रन्थों के शब्दों की व्याख्या और शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र व्युत्पत्ति के ज्ञान के लिए निरुक्त ग्रन्थों की रचना हुई। विदित है कि वेदों के अध्ययन की सहूलियत के लिए रचे गए छह वेदांगों में से *निरुक्त* एक है। दुनियाँ भर में शब्दों की उत्पत्ति सम्बन्धी गहन विश्लेषण करने का पहला श्रेय भारत के संस्कृत वैयाकरणों को जाता है। संस्कृत के चार वैयाकरण सबसे प्रसिद्ध हैं : यास्क, पाणिनि, कात्यायन, और पतंजलि।

संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति में उक्त वैयाकरणों के कार्यों के सन्दर्भ से आगे चलकर पश्चिमी विद्वानों ने भी व्युत्पत्तिशास्त्र का विकास किया।

वेदों में प्रयुक्त कठिन शब्दों के कोश *निघण्टु* को यास्क ने *समाम्नाय* कहा। *निघण्टु* पर एक मात्र उपलब्ध टीका *निघण्टु निर्वचन* है।

पाणिनि और अष्टाध्यायी

संस्कृत के सबसे बड़े वैयाकरण पाणिनि (ई.पू. 500) का जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गान्धार में, जो काबुल

और सिन्धु नदी के संगम स्थल से कुछ मील दूर शलातुर नामक गाँव में हुआ। अब यह गाँव लहुर कहलाता है, और आधुनिक पेशावर (पाकिस्तान) के करीब है। उनके पिता का नाम पणिन, माता का नाम दाक्षी और गुरु का नाम उपवर्ष था। जन्म ग्राम के कारण पाणिनि शालातुरीय भी कहे गए हैं, *अष्टाध्यायी* में उन्होंने स्वयं इस नाम का उल्लेख किया है। चीनी यात्री युवांगच्वांग (7वीं शती) उत्तर-पश्चिम से आते समय शालातुर गाँव गए थे।वैसे उनके काल के सम्बन्ध में मतैक्य का अभाव है। कोई ई.पू. सातवीं शताब्दी मानता है, कोई पाँचवीं, कोई चौथी। पर स्रोतों और अनुशीलनों से तय होता है कि उनका अस्तित्व ई.पू. छठी से चौथी शताब्दी के बीच रहा होगा। उनका जीवनकाल ई.पू. 520-460 माना जाता है। संस्कृत भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने में उनका अतुल्य योगदान है। आठ अध्यायों में विभक्त उनके प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ *अष्टाध्यायी* में चार हजार सूत्र हैं। व्याकरण ग्रन्थ होने के अलावा *अष्टाध्यायी* में समकालीन भारत के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिन्तन, खान-पान, रहन-सहन आदि के प्रसंग स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

शब्दविद्या के अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों को पढ़ते हुए उनके परस्पर भेदों को देखकर पाणिनि के मन में व्याकरणशास्त्र को व्यवस्थित करने का विचार आया। *वैदिक संहिताओं, शाखाओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्* आदि वांग्मय से शब्दसामग्री एकत्र कर उन्होंने *अष्टाध्यायी* में उपयोग किया है। उन्होंने *निरुक्त* और अन्य व्याकरण का भी सूक्ष्म अध्ययन किया। घूम-घूमकर उन्होंने लोक और लोगों के बहुमुखी जीवन से परिचय किया, हजारो शब्द एकत्र कर उन्हें वर्गीकृत किया और उनकी कई सूचियाँ बनाईं। 'धातु पाठ' वाली सूची को उन्होंने *अष्टाध्यायी* से अलग रखा। उसमें 1943 धातुएँ हैं। एक प्रकार की वे धातुएँ हैं जो पाणिनि से पहले साहित्य में प्रयुक्त हो चुकी थीं और दूसरी वे जो लोगों की बोलचाल में उन्हें मिली।

वेदों के आचार्यों वाली सूची में जिस आचार्य के नाम से जो चरण प्रसिद्ध हुआ, उसमें पढ़नेवाले छात्र जिस नाम से प्रसिद्ध थे और उन छन्द या शाखाओं के जो नाम थे, उन सब की निष्पत्ति भिन्न भिन्न प्रत्यय लगाकर पाणिनि ने दी है। जैसे आचार्य तित्तिरि का चरण तैत्तरीय कहलाता था और उस विद्यालय के छात्र एवं वहाँ की शाखा या संहिता भी तैत्तिरीय कहलाती थी।

उनकी तीसरी सूची 'गोत्रों' के सम्बन्ध में है। मूलतः सात गोत्र वैदिक युग से चले आ रहे थे। पाणिनि के काल तक आते आते उनका बहुत विस्तार हो गया। श्रौत सूत्रों में गोत्रों की कई सूचियाँ हैं। उन्होंने वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं के परिवार या कुटुम्ब के नामों की बहुत बड़ी सूची बनाई, जिसमें आर्ष और लौकिक दोनों गोत्र थे। छोटे-मोटे पारिवारिक नाम या अल्लों को उन्होंने गोत्रावयव कहा है। परिवार में नाम रखे जाने का ब्योरेवार उल्लेख पाणिनि ने किया है।

चौथी सूची भौगोलिक थी। पाणिनि का जन्मस्थान उत्तर पश्चिम में था, जिस प्रदेश को हम गान्धार कहते हैं। यूनानी भूगोल लेखकों ने लिखा है कि उत्तर पश्चिम अर्थात् गान्धार और पंजाब में लगभग 500 ऐसे ग्राम थे जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या दस सहस्र के लगभग थी। पाणिनि ने उन 500 ग्रामों के वास्तविक नाम भी दे दिए हैं, जिनसे उनके भूगोल सम्बन्धी गणों की सूचियाँ बनी हैं। पंजाब की अनेक जातियों के नाम उन गाँवों के अनुसार थे, जहाँ वह जाति निवास करती थी, या जहाँ से उसके पूर्वज आए थे। इस प्रकार निवास और पूर्वजों का स्थान दोनों से जो उपनाम बनते थे वे पुरुष नाम में जुड़ जाते थे, क्योंकि ऐसे नाम भी भाषा के अंग थे।

पंजाब के मध्यभाग में खड़े होकर पूर्व और पश्चिम की ओर देखने पर उन्हें दो पहाड़ी इलाके पूरब में त्रिगर्त (आज का कुल्लू काँगड़ा) और पश्चिम में गान्धार की पूर्वी राजधानी तक्षशिला से पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती तक फैला पहाड़ी प्रदेश दिखाई पड़ा; इसी में सिन्धु नदी के उत्तर से दक्षिण तक फैला वह प्रदेश था, जिसे अब कबायली इलाका कहते हैं। पाणिनि ने इस प्रदेश में रहनेवाले कबीलों की विस्तृत सूची बनाई और संविधानों का अध्ययन किया। उन कबीलों के समाज की शासन व्यवस्था, रहन-सहन, जीवन-यापन आदि की भी सूची उन्होंने बनाई।

अष्टाध्यायी के चौथे पाँचवें अध्यायों में उन्होंने हजारो शब्दों की व्युत्पत्ति बताई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी किसान, रंगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिये, बुनकर, कुम्हार आदि सैकड़ों पेशेवर लोगों से मिलजुलकर पाणिनि ने उनके विशेष पेशे के शब्दों का संग्रह किया। शब्दों के साथ लगनेवाले उपयुक्त प्रत्यय की शिक्षा दी। उनके

सूत्रों में गायों, बैलों की रोचक जीवनकथा भी है। आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए उन्होंने समकालीन सिक्कों की भी जाँच की, और तौल की लघु इकाई मासा, रत्ती के मोल-भाव और अदला-बदली का संकेत दिया। उस दौर की शिक्षा व्यवस्था का उन्होंने गम्भीरता से अवलोकन किया। वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। पर अपनी रचना में उन्होंने प्रधानता लौकिक संस्कृत को दी। सम्भावना व्यक्त की जाती है कि हो न हो, अध्यापन हेतु उनका सम्बन्ध तक्षशिला के विश्वविद्यालय से रहा हो। कहा जाता है कि सामग्री संग्रह के बाद उन्होंने कुछ समय तक एकान्तवास कर अष्टाध्यायी की रचना की।

पतंजलि ने माना है कि पाणिनि की *अष्टाध्यायी* का सम्बन्ध सभी वेदों से था। उस ग्रन्थ की सर्वसम्मत प्रतिष्ठा का यही कारण था। पाणिनि किसी मत विशेष के पक्षपाती नहीं थे, वे बुद्ध की *मज्झिम पटिपदा* के अनुयायी थे। उन्हें मांगलिक आचार्य कहा गया है। उनके हृदय की उदार वृत्ति मंगलात्मक कर्म और फल की इच्छुक थी। पतंजलि के अनुसार पाणिनि ने जो सूत्र एक बार लिखा उसे काटा नहीं। व्याकरण में दर्ज उनके अक्षर प्रमाण माने जाते हैं।

भारत में लिपि का पुनः प्रयोग (सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद) ई.पू. छठी शताब्दी में हुआ, ब्राह्मी लिपि का प्रथम प्रयोग दक्षिण भारत के तमिलनाडु में हुआ जो उत्तर पश्चिम भारत के गान्धार से बहुत दूर था। इधर ई.पू. छठी शताब्दी में गान्धार में फारसी शासन था, ऐसी स्थिति में सम्भावना बनती है कि पाणिनि ने लिखने के लिए आर्माइक वर्णों का प्रयोग किया होगा। *माहेश्वर सूत्र* (स्वर शास्त्र), *अष्टाध्यायी*(शब्द विश्लेषण), *धातुपाठ* (धातुमूल, अर्थात क्रिया के मूल रूप) और *गणपाठ* चार भागों में रचित 'संस्कृत व्याकरण' भारतीय वांग्मय को उनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

पतंजलि और महाभाष्य

महाभाष्य शीर्षक से *अष्टाध्यायी* पर पतंजलि द्वारा लिखी गई टीका भारतीय वांग्मय के लिए महत्त्वपूर्ण अवदान है। *योगसूत्र, अष्टाध्यायी महाभाष्य,* और *आयुर्वेद परक ग्रन्थ* के प्रणेता महान दार्शनिक **पतंजलि** व्याकरणाचार्य पाणिनि के शिष्य थे। उनका जन्म गोनारद्य (गोनिया) में हुआ, पर वे काशी आकर नागकूप पर बस गए थे। उन्हें शेषनाग का अवतार माना जाता है। वे रसायन विद्या के विशिष्ट आचार्य थे, उन्हें *चरक संहिता* का प्रणेता माना जाता है। सम्भवतः उनका काल पुष्यमित्र शुंग (ई.पू. 195-142) का शासनकाल था। राजा भोज ने इन्हें तन के साथ-साथ मन का भी चिकित्सक कहा है।

पतंजलि काशी-मण्डल के मुनि त्रय की परम्परा में अन्तिम मुनि थे। व्याकरण के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर भी उनका समान रूप से अधिकार था। व्याकरण शास्त्र में उनकी बात को अन्तिम प्रमाण समझा जाता है। समकालीन जनजीवन का उनका अनुभव इतना प्रमाणिक था कि उनके *महाभाष्य* को व्याकरण के साथ-साथ तत्कालीन समाज का विश्वकोश भी माना जाता है। *महाभाष्य* की रचना का काल ई.पू. 150 के आसपास माना जा सकता है। द्रविड़ देश के सुकवि रामचन्द्र दीक्षित के काव्य ग्रन्थ *पतंजलि चरित* में व्यक्त सम्भावनाओं के अनुसार आदिशंकराचार्य के दादागुरु आचार्य गौड़पाद, पतंजलि के शिष्य थे, पर यह अपुष्ट सूचना है।

14.4 प्रसिद्ध भाष्यकार

आधुनिक काल में आकर तो दयानन्द सरस्वती, श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे कई वरेण्य भाष्यकारों ने प्राचीन ग्रन्थों का हृदयग्राही भाष्य लिखा। पर भारत में सबसे पुराना भाष्य किसने लिखा, यह कहना मुश्किल है। वैसे यास्क रचित वैदिक शब्दों के संग्रह और उनकी व्युत्पत्तियों के वेदांग ग्रन्थ के अलावा उपलब्ध भाष्यों में सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन भाष्य आचार्य सायण का है, जो चारों वेदों से सम्बद्ध है। उनसे पूर्व के भाष्यकारों के भाष्य अत्यधिक गूढ़ थे। प्राप्त सूत्रों से मिली जानकारी के अनुसार निम्नलिखित भाष्यकारों ने ऋग्वेद की टीका लिखी :

स्कन्द स्वामी : ऐतिहासिक ग्रन्थों से प्राप्त जानकारी के अनुसार कुमारिल-शंकर के समय में वेदों का अर्थ समझने और समझाने की क्रिया शुरू हुई। स्कन्द स्वामी का काल भी इसी के आसपास (सन् 625) माना जाता है। कहा जाता है कि शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी (सन् 638) को स्कन्द स्वामी ने अपना भाष्य पढ़ाया था। ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक के अन्त में प्राप्त श्लोक से पता चलता है कि स्कन्द स्वामी गुजरात के वल्लभी के रहने वाले थे। इस भाष्य

के प्रत्येक सूक्त के आरम्भ में उस सूक्त के ऋषि-देवता और छन्द का उल्लेख किया गया है । साथ ही अन्य ग्रन्थों से उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं । माना जाता है कि स्कन्द स्वामी ने प्रथम चार मण्डल पर ही अपना भाष्य लिखा था, शेष भाग नारायण तथा उद्गीथ ने मिलकर पूरा किया।

माधव भट्ट : प्रसिद्ध भाष्यकारों में माधव नाम के चार भाष्यकार हुए हैं । एक सामवेद भाष्यकार के रूप में ज्ञात हैं और बाकी के तीन ऋग्वेद के; पर ऐतिहासिकता के साथ इन तीनों को सही-सही पहचानना सम्भव नहीं हो पाया है। एक तो आचार्य सायण खुद हैं, जिन्होंने अपने बड़े भाई माधव से प्रेरणा लेकर भाष्य लिखा और इसका नाम माधवीय भाष्य रखा। कुछ विद्वान वेंकट माधव को ही माधव समझते हैं, पर ऐसा मानने में दुविधा होती है, क्योंकि भाष्यकार वेंकट माधव की ऋग्टीका आंशिक ही उपलब्ध है, और उससे प्रतीत होता है कि वे श्रेष्ठ वेदज्ञानी थे, स्कन्द स्वामी तक के भाष्य पर उनका प्रभाव दिखता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि वेंकट माधव का काल स्कन्द स्वामी से भी पहले था।

वेंकट माधव : वेंकट माधव का लिखा भाष्य बहुत संक्षिप्त है। इसमें व्याकरण आदि से सम्बन्धित कोई टिप्पणी नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों के साक्ष्य के साथ सुन्दर और प्रमाणिक प्रस्तुति इस भाष्य की खास विशेषता है।

धानुष्कयज्वा : भाष्यकार धानुष्कयज्वा का उल्लेख विक्रम की सोलहवीं शताब्दी से पूर्व मिलता है, उन्होंने तीन वेदों के भाष्य लिखे।

आनन्दतीर्थ : वैष्णवाचार्य आन्नदतीर्थ ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों पर चौदहवीं सदी के मध्य में अपना भाष्य लिखा।

आत्मानन्द : ऋग्वेद के भाष्य सर्वदा यज्ञपरक और देवपरक ही मिलते हैं, जबकि आत्मानन्द का भाष्य आध्यात्मिक है।

सायण : मध्यकाल का लिखा सबसे विश्वसनीय, सम्पूर्ण और प्रभावकारी भाष्य सायण प्रणीत भाष्य है। वेदों के सर्वमान्य भाष्यकर्ता आचार्य सायण (चौदहवीं शताब्दी) प्रकाण्ड विद्वान के साथ-साथ महान राजनीतिज्ञ भी थे। वे दक्षिण भारत के निवासी थे। माना जाता है कि विजयनगर के महाराज बुक्का (वुक्काराय) ने वेदों के भाष्य का कार्य अपने अध्यात्मिक गुरु, राजनीतिज्ञ अमात्य माधवाचार्य को सौंपा था। पर इस वृहत कार्य का दायित्व उन्होंने अपने अनुज सायण को सौंप दिया। शुरू में आचार्य सायण विजयनगर राज्य के मन्त्री थे, अपने विशाल ज्ञानकोष के बूते उन्होंने न केवल इस टीका का सम्पादन किया, बल्कि 24 वर्षों तक सेनापति का दायित्व भी निभाया। बाद में संन्यास धारण कर श्रृंगेरी मठ के अधिष्ठाता हो गए। उनसे पहले समस्त वेद ग्रन्थों का ऐसा सुविचारित भाष्य किसी ने नहीं किया। उनके भाष्य में वैदिक विधि-विधानों और उनके आध्यात्मिक अर्थों का सुस्पष्ट विवेचन है। वेदों का रहस्य जानने हेतु सायण-भाष्य सचमुच बेहतरीन कुंजी है। सन् 1387 में उनका देहावसान हुआ।

सायणाचार्य मन्त्र-संहिताओं के समान ब्राह्मण ग्रन्थों के भी प्रामाणिक भाष्यकार हैं। जैमिनीय शाखा के सामवेदीय ब्राह्मणों और गोपथ ब्राह्मण को छोड़कर सभी उपलब्ध ब्राह्मणों पर उनके भाष्य प्राप्त हैं। सम्प्रति ब्राह्मण ग्रन्थों को समझने में उनके भाष्यों से सर्वाधिक सहायता मिलती है। वैदिक तत्वों की मर्मज्ञता के साथ-साथ उन्हें यज्ञविद्या के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक पक्षों का भी गहन ज्ञान था। इसीलिए ब्राह्मणों की व्याख्या में वे शब्दार्थ के साथ-साथ कर्मकाण्डीय पद्धति के आवश्यक अंश भी देते जाते थे, अन्य ब्राह्मणों के अंश उद्धृत कर तुलनात्मक दृष्टि भी देते थे, यथास्थान सूत्र ग्रन्थों के सन्दर्भ भी देते थे।

14.5 भारतीय अनुवाद की प्राचीन चिन्तनधारा

ऋग्वेद के *ऐतरेय ब्राह्मण* पर सायण से पूर्व दो भाष्यकारों गोविन्दस्वामी (13वीं शती से पूर्व) और षड्गुरुशिष्य (12वीं शती के मध्य)के भाष्य मिलते हैं। षड्गुरुशिष्य का भाष्य संक्षिप्त है और अनन्तशयन ग्रन्थमाला (केरल) से प्रकाशित है। अवन्ती के विक्रम राजा के धर्माध्यक्ष पराशर गोत्रीय हरिस्वामी (नागस्वामी के पुत्र) के प्राचीन और प्रामाणिक *शतपथ-भाष्य* का निर्माण काल सन् 538 माना जाता है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* पर भट्टभास्कर और सायणाचार्य के भाष्य उपलब्ध हैं। *सामवेद* के सभी कौथुमशाखीय ब्राह्मणों पर सायणाचार्य के भाष्य उपलब्ध हैं। *ताण्ड्य ब्राह्मण* पर हरिस्वामी के पुत्र जयस्वामी की टीका का उल्लेख तो मिलता है, पर वह अनुपलब्ध है। *सामब्राह्मणों* पर भट्टभास्कर मिश्र और भरतस्वामी तथा *मन्त्र ब्राह्मण* पर गुणविष्णु ने भाष्य लिखा है। दक्षिण भारत के महान् वैदिक विद्वान् श्रीवंशीय विष्णु भट्ट के पुत्र द्विजराज भट्ट का *संहितोपनिषद ब्राह्मण* पर भाष्य है।

आचार्य आपस्तम्ब (ई.पू. पाँचवीं शताब्दी के आसपास) की धारणा का अनुसरण करते हुए पाणिनि (ई.पू. 520-460), पतंजलि (ई.पू. दूसरी शताब्दी), शबरस्वामी पितृभूति(मूल नाम आदित्य देव, शबर भाष्य के लिए ख्यात, अनुमानतः दूसरी-तीसरी शताब्दी में अस्तित्व, कश्मीर अथवा तक्षशिला के वासी), कुमारिल भट्ट(सन् 670 के आसपास), शंकराचार्य (सन् 788-820), वाचस्पति मिश्र(सन् 850), राजशेखर (सन् 917 के आसपास), रामानुज(सन् 1027 के आसपास) और सायणाचार्य (चौदहवीं शताब्दी) के साथ-साथ भवस्वामी, देवस्वामी, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, धूर्तस्वामी, देवत्रात,उवट, मस्करी जैसे अनेक भाष्यकारों ने मन्त्र-संहिताओं के साथ ही ब्राह्मणों की भी श्रुतिरूपता पर बल दिया है। प्रमाणस्वरूप ब्रह्मसूत्र, गीता और अन्य दार्शनिक सूत्रग्रन्थों को देखा जा सकता है।

विदित है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में विधियों और हेतुओं का निरूपण प्रवचनात्मक और मन्त्रों के औचित्य व्याख्यात्मक हैं। आधुनिक युग में, स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्य समाज में दीक्षित विद्वानों ने, ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद न मानकर वेदव्याख्यान ग्रन्थ माना है। भिन्न-भिन्न ब्राह्मण-ग्रन्थों के अलग-अलग प्रवक्ता हैं, उन प्रवचनकर्ताओं में कुछ ऋषि श्रेणी के हैं, कुछ आचार्य-परम्परा के। *शतपथ ब्राह्मण* के प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य ऋषि हैं तो *ऐतरेय ब्राह्मण* के प्रवक्ता महिदास आचार्य।

14.6 प्राचीन भारत का राज-काज और अनुवाद चिन्तन

अनुवाद चिन्तन के क्रम-विधान पर बात करने के इधर बड़े-बड़े फलक खुल गए हैं। लोग अक्सर अनुवाद के दात्यित्व, सम्वेदनशीलता, सावधानी, विफलता आदि को लेकर एक से एक बातें करते हैं। विचार और वस्तु के विनिमय में सम्प्रेषण के साधन के रूप में अनुवाद की शुरुआत हुई। भाष्य, टीका, अन्वय के रास्ते आज अनुवाद जिस मुकाम पर पहुँचा है, इस यात्रा में कई मोड़ आए। वस्तु और विचार के विनिमय के अलावा मत, धर्म एवं मान्यताओं के प्रचार में उसने अपना योगदान दिया। आगे चलकर यह ज्ञान को जनसुलभ बनाने में अपना योगदान देने लगा, फिर शासन-कार्य में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई। सांस्कृतिक संचरण का आधार अनुवाद हो गया। विज्ञान प्रौद्योगिकी के नए-नए अवदानों से संसार का मानचित्र सिकुड़ गया, समाज-व्यवस्था और सांस्कृतिक पद्धतियों ने कई करवटें लीं। इधर आकर 'पॉलिक्टिस ऑफ ट्रान्सलेशन' पदबन्ध प्रमुख चर्चा में आ गया। अब इस पदबन्ध का अर्थ इतना मूल्य-बोधित(Value Loaded) है कि घोर मशक्कत के बावजूद इसका हिन्दी अनुवाद कभी अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हो जाता है, कभी अतिव्याप्ति दोष से। वैसे इसका एक अर्थ बहुत प्राणवान है *'अनुवाद की धारणा।'* यह अर्थ पवित्र भी है। ब्रिटिश उपनिवेशियों के आगमन से पूर्व भारत में अनुवाद के जितने उपक्रम हुए, सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। प्राचीन काल से लेकर मुगल शासन के अन्त तक के जितने भी अनुवाद हैं, सभी में अनुवाद कर्म के वही पवित्र और प्राणवान उद्यम दिखते हैं। अर्थात् किसी तरह ज्ञान सम्पदा, चिन्तकों-ऋषियों के बौद्धिक अवदान का प्रचार-प्रसार अधिकतम जन-मन तक महत्तम सम्प्रेषणीयता के साथ हो, महत्त्वपूर्ण प्रसंगों की पहुँच जन-जन तक बने। बात चाहे धार्मिक पौराणिक ग्रन्थों के प्रचार की हो; धर्म-मत के प्रसार की हो, ऋषियों-मुनियों के उपदेश की हो, राजाज्ञा हो, साम्राज्यगाथा हो, देव-पितर की कीर्त्तियाँ हों, साम्राज्य के विस्तारण में राजनयिक वार्ता हो, युद्ध का सामरिक सन्देश हो... सभी में अनुवाद का कार्य दो भाषिक पृष्ठभूमि के व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषणीयता कायम करना होता था, इसलिए

आदिकाल से लेकर मुगल शासन के अन्त तक हुए अनुवाद कार्य में पॉलिटिक्स ऑफ ट्रान्सलेशन को अनुवाद की धारणा ही कहेंगे। पर ब्रिटिश उपनिवेशियों ने अनुवाद कर्म में ऐसी दुर्वृत्ति शामिल कर दी कि बाद के दिनों में उसका घातक परिणाम अनुवाद को भोगना पड़ा और 'पॉलिटिक्स ऑफ ट्रान्सलेशन' का हिन्दी समानार्थी पदबन्ध न तो 'अनुवाद की धारणा' या 'अनुवाद की राजनीति' कहे बनता है, न 'अनुवाद का उद्देश्य।' उल्लेखनीय है कि प्राचीन समय में अनुवाद चिन्तन के फलक केवल धार्मिक-पौराणिक शैक्षिक ग्रन्थों के भाष्य-टीका के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं होते थे, समकालीन शासकों की नीतियों, साम्राज्य के विस्तार के प्रयासों, प्रयाणों, सोपनों; सामरिक नीतियों, राजदरबार में नियुक्त आचार्यों के अभिकर्मों में भी शासकों, मन्त्रियों और आचार्यों के अनुवाद चिन्तन की स्थिति दिखती थी।

प्रमाणित सत्य है कि सम्राट चन्द्रगुप्त (ई.पू. 345-298) पूरे भारत को एक साम्राज्य के अधीन लाने में सफल रहे। उनके राज्यारोहण की तिथि ई.पू. 322 निर्धारित की जाती है। उन्होंने लगभग 24 वर्ष तक शासन किया। प्रसिद्ध कृति *मुद्राराक्षस* से ज्ञात होता है कि उन्होंने हिमालय प्रदेश के राजा पर्वतक से सन्धि की थी। चन्द्रगुप्त की सेना में शक, यवन, किरात, कम्बोज, पारसीक तथा वह्लीक के होने की स्थिति सम्भावित है। उनका अन्तिम युद्ध सिकन्दर के पूर्वसेनापति तथा सीरिया के ग्रीक सम्राट सेल्यूकस के साथ हुआ। चन्द्रगुप्त की शक्ति के समक्ष सेल्यूकस को झुकना पड़ा। बाद में सेल्यूकस ने मेगस्थनीज नामक दूत चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा था। साम्राज्य-विस्तार के उस कठिन उद्यम में चन्द्रगुप्त का अधिकांश समय युद्धों में बीता। जैन परम्पराओं के अनुसार, चन्द्रगुप्त अपने अन्तिम दिनों में जैन-मुनि हो गए, स्वामी भद्रबाहु के साथ वे श्रवणबेलगोल गए। वहीं उन्होंने उपवास द्वारा शरीर त्याग किया। श्रवणबेलगोल में जिस पहाड़ी पर वे रहते थे, उसका नाम चन्द्रगिरि है, वहाँ उनका बनवाया हुआ चन्द्रगुप्तबस्ति नामक मन्दिर भी है। इस पूरी कहानी और समर-सन्धान का सार यह है कि अनुवाद चिन्तन की कोई व्यवस्थित परम्परा अवश्य ही रही होगी, वर्ना सम्प्रेषण का आधार ही नहीं बनता।

सम्राट अशोक (ई.पू. 304-232) का साम्राज्य भी अति विस्तृत था। राज-काज, मत-विचार, धर्म-धारणा के प्रचार-प्रसार में उनकी नजर देश-देशान्तर तक जाती थी। उन्होंने हिन्द देश, तिब्बत, अफगानिस्तान, लंका, बर्मा, कम्बोडिया, चीन, जापान, तथा दक्षिण एशिया के कई द्वीपों में बौद्ध प्रचारक भेजा था। उन सभी बौद्ध प्रचारकों का अनुवाद चिन्तन प्रखर था, बौद्ध-साहित्य की वैश्विक प्रशस्ति में अनुवाद चिन्तन की वह प्रखरता स्पष्ट दिखती है। उल्लेखनीय है कि विश्व का सब से बड़ा बौद्ध स्मारक बोरोबन्दर (इण्डोनेशिया) में आठवीं शताब्दी में बनाया गया। कहना असंगत न होगा कि कम्बोडिया में विष्णु का भव्य मन्दिर, और तिब्बती भाषा की वर्णमाला पर गुप्तकालीन प्रभाव भारत की प्राचीन अनुवाद चिन्तनशीलता का प्रमाण है।

पाँचवी शताब्दी के प्रथम चरण में चीनी राजदूत फाहियान सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (सन् 380-412) के दरबार में आए और वहाँ छह वर्षों तक रहे। कपिलवस्तु, लंका तथा मगध में रहकर उन्होंने कई बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और उसे वे अपने साथ चीन ले गए। सन् 602 में चीनी पर्यटक ह्वेनसांग समरकन्द, अफगानिस्तान के रास्ते सम्राट हर्षवर्द्धन (सन् 590-647) के दरबार में आए, भारत में सन् 657 तक रहकर उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और कई ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। बौद्ध मत तथा योग सम्बन्धी विषयों को उन्होंने अपने देश में प्रचारित किया।

प्रसिद्ध भारतीय ग्रन्थ *बृहतसंहिता* का अरबी अनुवाद सर्वप्रथम महमूद गजनवी के समकालीन अलबिरूनी ने बाद में अजीज शम्स बहा ए नूरी ने इसका फारसी अनुवाद किया।

लोग चाहे चीन के हों, ईरान, अरब के हों, तिब्बत, अफगान के हों, पर भारत आकर यदि किसी ने यहाँ के प्रसिद्ध ग्रन्थ, महत्त्वपूर्ण दस्तावेज आदि का अपनी भाषा में अनुवाद किया और साथ ले गए, तो इसमें दोनों ही भाषिक भूगोल के शासकों, पर्यटकों, विद्वानों के बौद्धिक उत्कर्ष और प्रखर अनुवाद-दृष्टि का परिचय मिलता है। अचानक से अपने देश से यहाँ आकर फाहियान, या ह्वेनसांग, या अलबिरुनी ने अनुवाद शुरू नहीं कर दिया होगा। उन लोगों के उस उद्यम में स्थानीय बुद्धिजीवियों और राजाओं के बौद्धिक, आर्थिक सहयोग-समर्थन की बड़ी भूमिका रही होगी, जो उनके अनुवाद-चिन्तन की विलक्षणता और दूरगामिता का बोधक है।

सन् 1362 में सुलतान फिरोज शाह तुगलक को नगरकोट पर आक्रमण में ज्वालामुखी मन्दिर से 1300 प्राचीन ग्रन्थ मिले थे, उनमें से अधिकांश तो नष्ट कर दिए गए, इज्जुद्दीन खालिद खानी ने 'दालाएल फिरोजशाही' तथा 'अबदुल' के नाम से भौतिक विज्ञान तथा खगोल विज्ञान के कुछ ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया अनुवाद किया।

कश्मीर के सुल्तान (वर्तमान जम्मू कश्मीर) जैन उल अबीदीन(सन् 1418-1470) ने धार्मिक सहिष्णुता और लोक कल्याणकारी गतिविधियों में अपनी नीति के लिए बड़ी ख्याति हासिल की। शासन में आते ही उन्होंने हिन्दू समुदाय से जज़िया कर हटा दिया और गोवध जैसी कुप्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। संस्कृत भाषा और साहित्य के संरक्षण में वे उदारता से आगे आए। उन्हें फारसी, संस्कृत और तिब्बती भाषा का बेहतरीन ज्ञान था। उन्होंने *महाभारत* और कल्हन की *राजतरंगिणी* का फारसी में अनुवाद करवाया। धार्मिक सहिष्णुता के कारण उनकी लाकप्रियता बढ़ी। उनके पिता के शासनकाल में जो हिन्दू कश्मीर छोड़ कर चले गए थे उन्हें वापस बुलाया। उन्होंने हिन्दुओं को अपने मन्दिरों के निर्माण और धर्मशास्त्र के अनुसार नीति-नियम के पालन की अनुमति दी। गोमाँस के बारे में उन्होंने कुछ नियम पारित किए। ब्राह्मण शिक्षार्थियों के लिए छात्रवृत्ति का भी पुनरारम्भ किया।

बहलोल लोदी के पुत्र एवं उत्तराधिकारी सिकन्दर शाह लोदी (मूल नाम निजाम खाँ) 17 जुलाई, 1489 को दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। उनकी माँ हिन्दू स्वर्णकार थीं। धार्मिक दृष्टि से सिकन्दर लोदी परम असहिष्णु, पर विद्या के परम पोषक थे। विद्वानों और दार्शनिकों को बड़े अनुदान देते थे। उनके दरबार में अरब और ईरान सहित विभिन्न देशों और जातियों के विद्वान पहुँचते थे। उनके प्रयत्नों से कई संस्कृत ग्रन्थ फारसी में अनूदित हुए। उनके आदेश पर संस्कृत के एक आयुर्वेद ग्रन्थ का *फरहंगे सिकन्दरी* शीर्षक से फारसी में अनुवाद हुआ। 'गुलरुखी' उपनाम से वे कविताएँ भी लिखते थे। उन्होंने संगीत के एक ग्रन्थ *लज्जत-ए-सिकन्दरशाही* की रचना की। वे स्वयं भी विद्वान थे, विद्वानों को संरक्षण देने की वजह से उनके दरबार में विद्वान जुटे रहते थे, कहते हैं कि रात्रि के समय उनके समक्ष बैठकर दर्जनों विद्वान चर्चा किया करते थे। उन्होंने मस्जिदों को सरकारी संस्थाओं का स्वरूप देकर उन्हें शिक्षा का केन्द्र बनाने की चेष्टा की। मुस्लिम शिक्षा में सुधार लाने हेतु उन्होंने तुलम्बा के विद्वान शेख अब्दुल्लाह और शेख अजीजुल्लाह को बुलाया था। उनके शासनकाल में हिन्दू भी बड़ी संख्या में फारसी सीखने लगे थे और उन्हें उच्च पदों पर रखा गया था। सिकन्दर शाह लोदी की मृत्यु 21 नवम्बर, 1517 को हुई।

14.7 मुगलकालीन अनुवाद चिन्तक

भाष्य, टीका, व्याख्या, विवेचन, अन्वय, सरलार्थ, विशेषार्थ जैसे कई अनुवाद सोपानों से गुजरकर भारतीय विद्वानों; और भारतीय कृतियों में अपने राज-काज एवं सामाजिक-नागरिक व्यवस्था के सुगढ़ संचालन के सूत्र देखने वाले भारत में आए हुए विद्वानों के उद्यमों ने अनुवाद में अनुकूलन (Adaptation) और आत्मसातीकरण (Apropriation) का चलन बढ़ाया। लिहाजा मुगल शासन काल में यह उद्यम खूब फला-फूला। इस दिशा में सबसे पहले नजर जाती है रामकथा के आत्मसातीकरण पर। रामकथा का प्रचार-प्रसार उससे सदियों पूर्व भी खूब होता आया था। भारतवर्ष के जितने भी यात्री वाणिज्य के लिए पड़ोसी राष्ट्रों में गए, वहाँ उन्होंने रामकथा का प्रचार-प्रसार किया, और वहाँ के नागरिकों ने उसमें अनुकूलन और आत्मसातीकरण की स्थिति ला दी। अनुकूलन और आत्मसातीकरण की दिशा में भारत में रामचरितमानस अनुपम उदाहरण है।

तुलसीदास कृत *रामचरितमानस* एक ऐसा धर्मनिरपेक्ष ग्रन्थ है जो एक तरफ हिन्दुओं के लिए वेद की तरह वरेण्य है, तो दूसरी तरफ मुसलमानों के लिए कुरान की तरह पूजनीय। उसकी महत्ता को रेखांकित करते हुए अब्दुलर्रहीम खानखाना ने कहा

रामचरितमानस विमल जन जीवन को प्राण

हिन्दुआन को वेद सम जवनहि प्रकट कुरान।

अकारण ही यह ग्रन्थ इस तरह लोकप्रिय नहीं हुआ। महाकवि तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति के वाहक इस महाकाव्य की रचना *स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा* के रूप में प्रतिज्ञापूर्वक की; पर यह नाना पुराण निगमागम के निचोड़

और लोक तथा शास्त्र के नवनीत की तरह हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ। धर्म, दर्शन और आपद् स्थितियों, सम्बन्धों, कर्तव्यों, जीवन-व्यवस्था और नीति-नियमों के संचालनों का जैसा सांगोपांग वर्णन इस ग्रन्थ में है, समग्र और एकत्र रूप से शायद ही कहीं अन्यत्र हो। कान्तासम्मित उपदेश की शैली में विभिन्न शास्त्रों में वर्णित कर्तव्याकर्तव्य की गाथा इस लोक-मंगलकारी कृति में इस तरह पिरोई है कि विद्वानों की मण्डली से लेकर किसान-मजदूरों की चौपाल तक में यह समान रूप से समादृत है। सम्भवतः यही कारण हो कि भिन्न-भिन्न मानस-फलक के लोगों को यह अपने-अपने मतलब की कृति लगी; किसी को इसमें धार्मिक पवित्रता दिखी, किसी को नैतिक शिक्षा का पवित्र पाठ दिखा, किसी को शासन-व्यवस्था का श्रेष्ठ प्रशिक्षण-ग्रन्थ लगा, किसी को समर-विधान का अनुपम उदारण लगा; अर्थात् जो बात महाकवि तुलसीदास ने *जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी* कहकर भगवान राम के बारे में कही, बाद के दिनों में वह बात रामचरितमानस पर लागू हो गई।

भारतीय वांग्मय में भाष्य और पुनर्रचना की प्राचीन और दीर्घ परम्परा है। अकेले रामकथा पर कई भाष्य और पुनर्रचनाएँ उपलब्ध हैं। वाल्मीकि *रामायण* के अलावा मूल रामकथा पर आधरित कृतियों में *अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्‌भुत रामायण* तथा तुलसीदास कृत *रामचरितमानस* आदि उल्लेखनीय हैं। रामकथा की लोकप्रियता का उत्कर्ष गोस्वामी तुलसीदास की पंक्ति *रामायन सतकोटि अपारा* में भी दिखता है।

लोकभाषा में होने की वजह से *रामचरितमानस* ने रामकथा को जनसाधारण में अत्यधिक लोकप्रिय बनाया। रामलीलाओं में मंचन के समय राधेश्याम कथावाचक द्वारा प्रस्तुत रामकथा को भी अत्यधिक लोकप्रियता मिली। कई प्रादेशिक भाषाओं में संस्कृत पाठ के आधार पर रामकथा की पुनर्रचना हुई। नौवीं शताब्दी में ओड़िया में *रूइपादकातेणपदी रामायण* और तमिल में कम्बन प्रणीत *कम्ब रामायण* की रचना हुई। *रंगनाथ रामायण, मोल्डा रामायण, भास्कर रामायण* आदि के साथ-साथ बहुत देर से अर्थात् उपनिवेश काल में लिखी गई *मिथिला भाषा रामायण* रामकथा की बहुविधि प्रस्तुति और अनुवाद चिन्तन की प्राचीन परम्परा के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

तथ्य है कि आर्य संस्कृति के साथ ही भारतवर्ष में रामकथा का प्रचार-प्रसार होता आया है और सामूहिक जीवन-यापन के समानान्तर कथावाचन की पद्धति में अन्तर आता गया है। पर रामकथा के प्रति मनुष्य का मौलिक अनुराग आज भी जस का तस है। यह बात न केवल भारत के लिए बल्कि देशान्तर के लिए भी सच है। इण्डोनेशिया में रामायण आज भी राष्ट्रीय पवित्र ग्रन्थ की तरह पूजित है, अदालतों में रामायण पर हाथ रखकर प्रण किया जाता है, वहाँ इसे *काकविन रामायण* कहा जाता है। थाइलैण्ड में इसे *रामकियेन* या *रामकीर्ति* कहा जाता है, कम्बोडिया में इसे *रामकेर* कहा है। जावा के मन्दिरों में वाल्मीकि रामायण के श्लोक खचित हैं। लाओस, वियतनाम, सुमात्रा तथा बाली आदि देशों में भी रामकथा की लोकप्रियता चर्चित है।

मुगल काल में रामायण का फारसी अनुवाद (मसीही रामायण) भी प्रकाशित हुआ था, जो रामकथा की लोकप्रियता का एक प्रमाण है। सन् 1623 में फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख साद मसीह ने भी *दास्ताने राम व सीता* शीर्षक से रामकथा लिखी। उर्दू में बाबू सिंह बालियान की लिखी *रघुवंशी उर्दू रामायण* भी है। इसमें रामकथा के विभिन्न संस्करणों और उनके प्रणेताओं का विवरण है।

श्रेष्ठ संस्कृत ग्रन्थों का अरबी तथा फारसी भाषा में अनुवाद करवाने हेतु मुगल शहंशाह अकबर ने 'मकतबखाना' नाम से एक विभाग कायम किया था। अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर के काल में भी वैसा होता रहा। बाद में उनके पोते दारा शिकोह ने इस पुनीत कार्य को आगे बढ़ाया।

हिन्दुस्तान का हजार वर्ष का इतिहास आज भी फारसी में सुरक्षित है। महाभारत, *रामायण, पंचतन्त्र, गीता* आदि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद मध्यकाल और उससे पहले ही हो चुका। ईरानी पाठकों को भारत का परिचय जानने में यह अनुवाद सहायक हुआ।

हुमायूँ ज्योतिष एवं भूगोल के विशिष्ट ज्ञाता एवं पुस्तकानुरागी बादशाह थे। उन्होंने दिल्ली के पुराने किले में अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय की स्थापना की थी। वे सदैव अपने साथ चुनी हुई पुस्तकों का जखीरा लेकर चलते थे। उनके समय में ईरान से भारत आए प्रवासियों को साहित्यिक वातावरण मिलता था। हुमायूँ ने भारतीय साहित्यिक मनीषियों

के साथ एक पृथक भारतीय शैली *सबक-ए-हिन्दी* का विकास किया; श्लेष, तिथिबन्ध व्यंग, मूल उपमाएँ तथा प्रत्यय आदि इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ थीं। ये सारे उद्यम गम्भीर अनुवाद चिन्तन और अनुवाद दृष्टि की दरकार रखते थे।

गुजरात विजय के बाद शहंशाह अकबर ने दुर्लभ पुस्तकों से अपने पुस्तकालय को भर दिया था। अकबर का शासन काल भारत में फारसी साहित्य के 'पुनर्जागरण' का काल था। *आइना-ए-अकबरी* में अकबर के राजदरबार के 59 महान फारसी कवियों के नाम मिलते हैं। अकबर के राजकवि फैजी, अमीर खुसरो आदि मुगल काल के भारतीय फारसी साहित्य के महानतम कवि थे। अकबर की आज्ञा से अब्बास खान सरवानी ने *तोहफा-ए-अकबरशाही* की रचना की जिसमें में शेरशाह सूरी के कार्यकलापों को उजागर किया गया।

सिन्ध के सिविस्तान, सहवान के निकट के बाशिन्दा शेख मूसा की पाँचवीं पीढ़ी शेख मुबारक नागौरी के पुत्र और अबुल फजल के बड़े भाई फैजी का नाम भारतीय अनुवाद चिन्तन की परम्परा में प्रमुखता से लिया जाता है। वे मध्यकालीन भारत के श्रेष्ठ विद्वान और फारसी के प्रसिद्ध कवि थे।उनका जन्म आगरा में 4 सितम्बर 1547 को हुआ। मुगल साम्राज्य में उनका बड़ा सम्मान था। वे शहंशाह अकबर के नवरत्न के अंग थे। उनका पूरा नाम शेख अबु अल फैज था। उन्होंने अपनी शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त की थी। फैजी सन् 1567 में अकबर के दरबार के कवि बने, सन् 1574 में अबुल फजल भी दरबार में पहुँचे। फैजी की उन्नति होने लगी। सन् 1578 में अकबर ने अपने बेटे शाहजादे सलीम और मुराद की शिक्षा का भार उनको दिया।

दक्षिण प्रवास से अकबर के नाम भेजे गए उनके पत्रों के संकलन *लतायफे फैजी* से उस समय की सामाजिक एवं संस्कृतिक स्थितियों; ईरान एवं तूरान के विद्वानों के विचार तथा अकबर द्वारा विद्वानों की सराहना की जानकारी मिलती है। सन् 1594 में उन्होंने निजामी गंजबी के *खम्से* की तर्ज पर पाँच मसनवियों की रचना की योजना बनाई, जिसमें निजामी के मखजने असरार की तरह *मरकजे अदवार* और *लैला मजनू* की तरह *नल दमन* (नल-दमयन्ती की प्रेमकथा) की रचना की। उसी वर्ष उन्होंने *नलदमन* अकबर को समर्पित किया। *सिकन्दरनामा* के वजन पर *अकबरनामा* की रचना की योजना बनाई पर गुजरात विजय पर कुछ ही शेर लिख सके। अमीर खुसरो और शीरीं की तरह *सुलेमान और विल्कीस* तथा हत पैकर की तरह *हत किश्वर* की रचना की योजना भी उन्होंने बनाई थी जो पूरा न हो सका। सन् 1593 में अरबी में उन्होंने कुरान की एक टीका लिखी, जिसमें केवल ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जिनके अक्षरों में नुक्ते न हों। फैजी की गजलों का संग्रह भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उनके शेरों की मुख्य विशेषता उत्साह एवं स्वतन्त्र दार्शनिक विचार हैं। धार्मिक संकीर्णता से उन्हें नफरत थी, वे दरवेशों, फकीरों तथा सन्तों से आदरपूर्वक व्यवहार करते थे। उन्होंने भास्कराचार्य के प्रसिद्ध गणित ग्रन्थ, *लीलावती* का संस्कृत से फारसी में अनुवाद किया। ग्रन्थ की प्रस्तावना के अनुसार यह कार्य सन् 1587 में पूरा हुआ। 15 अक्तूबर, 1595 को क्षय रोग अत्यधिक बढ़ जाने से लाहौर में उनकी मृत्यु हुई।

मातृभाषा चागताई (तुर्की भाषा का पुराना रूप) में बाबर के लिखे आत्मजीवनचरित *तुजुके बाबरी* का फारसी अनुवाद अकबर ने सन् 1583 में अर्ब्दुरहीम खानखाना द्वारा सन् 1589-90 में *बाबरनामा* शीर्षक से करवाया, इसमें सन् 1504 से 152९ तक की भारत की राजनीतिक एवं प्राकृतिक स्थिति पर बेहतरीन वर्णन है। अब्दुर्रहीम खानखाना मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति के प्रतिनिधि कवि थे। उनका जन्म 17 दिसम्बर, 1556 को लाहौर में हुआ। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। केशव, आसकरन, मण्डन, नरहरि और गंग जैसे कवियों ने उनकी घनघोर प्रशंसा की। वे अकबर के अभिभावक बैरम खाँ के पुत्र और अकबर के नवरत्नों में से एक थे। गुजरात के युद्ध में शौर्य प्रदर्शन के कारण अकबर ने उन्हें *खान-ए-खाना* की उपाधि दी थी। रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। उन्हें ज्योतिष का भी ज्ञान था। काव्य सृजन उनकी खानदानी परम्परा थी। शृंगार, नीति और भक्ति उनकी कविताओं के मूल भाव हैं। उनका देहान्त 70 वर्ष की आयु में सन् 1626 में हो गया।

बैरम खाँ के कुछ दुश्मन दरबारियों के विरोध के बावजूद अकबर ने विलक्षण प्रतिभाशाली बालक रहीम का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा शहजादों की तरह शुरू करवाई, दस-बारह साल की उम्र में ही रहीम का व्यक्तित्व आकार ग्रहण करने लगा, अकबर ने शहजादों को प्रदान की जाने वाली उपाधि मिर्जा खाँ से रहीम को सम्बोधित करना शुरू किया। उन्होंने रहीम की शिक्षा के लिए मुल्ला मुहम्मद अमीन को नियुक्त किया। रहीम ने तुर्की, अरबी, फारसी एवं

संस्कृत भाषा सीखी; छन्द, काव्य, गणित, तर्क शास्त्र और फारसी व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया। काव्य सृजन, दानशीलता, राज्य संचालन, वीरता और दूरदर्शिता जैसे गुण उन्हें अपने माँ-बाप से संस्कार में मिले थे। सईदा बेगम उनकी दूसरी माँ थीं। वे भी कविता करती थीं।

अकबर ने अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री और अजीज कोका की बहन माहबानो से रहीम का निकाह कराया।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने तुर्की भाषा के एक ग्रन्थ *वाकयात बाबरी* का फारसी में अनुवाद किया। फारसी में अनेक कविताएँ लिखीं। फारसी और संस्कृत शब्दों के अनूठे मेल से उनका लिखा एक ज्योतिष ग्रन्थ *खेट कौतुक जातकम्* है।

अकबर कालीन मनसबदार मुल्ला अब्द-उल-कादिर बदायूँनी (सन् 1540 से 1615) एक फारसी मूल के प्रसिद्ध कवि, भारतीय इतिहासकार एवं अनुवादक थे। उन्होंने *रामायण, महाभारत* एवं *अर्थववेद* का फारसी में अनुवाद किया। वे मुलुक शाह के पुत्र थे। उनका बचपन बसावर में बीता, बाद में वे बदायूँ आ गए। बाद के वर्षों में उन्होंने सूफीवाद का अध्ययन किया। सन् 1574 में अकबर ने उन्हें अपने यहाँ इस्लाम धर्म के अधिकारी और सलाहकार नियुक्त किया।

मुगल शासनकाल में फारसी और तुर्की में कई ग्रन्थ लिखे गए, संस्कृत और हिन्दी में कई रचनाएँ हुईं। पर यहाँ चूँकि अनुवाद पर बात करनी है, इसलिए उधर दृष्टि दौड़ाने से अकबर के समय के प्रथम संस्कृत-फारसी शब्द कोश *पारसी प्रकाश* की रचना का स्तुत्य प्रयास सामने आता है। उल्लेखनीय है कि संस्कृत और फारसी के समन्वयक विद्वान पण्डितराज जगन्नाथ शाहजहाँ के दरबारी कवि थे।

मुगल सम्राट अकबर द्वारा गठित *अनुवाद विभाग* में संस्कृत, अरबी, तुर्की एवं ग्रीक भाषाओं की अनेक कृतियों का अनुवाद फारसी में करवाया गया।

1. *रज्मनामा* शीर्षक से अब्दुल कादिर बदायूँनी, नकीब खाँ एवं अब्दुल कादिर द्वारा किया गया *महाभारत* का फारसी अनुवाद अनुवाद चिन्तन का बेहतरीन नमूना है।
2. सन् 1589 में अब्दुल कादिर बदायूँनी ने *रामायण* का फारसी अनुवाद किया।
3. *जहान-ए-जफर* शीर्षक से मुहम्मद खाँ गुजराती ने ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ *तजक* का फारसी अनुवाद किया।
4. हाजी इब्राहिम सरहिन्दी ने *अथर्ववेद* का फारसी अनुवाद किया।
5. *अनवर-ए-सुहैली* शीर्षक से अबुल फजल ने तथा *यार-ए-दानिश* शीर्षक से मौलाना हुसैन फैज ने *पंचतन्त्र* का फारसी अनुवाद किया।
6. *आयगर दानिश* शीर्षक से अबुल फजल ने *कालिया दमन* का फारसी अनुवाद किया।
7. मौलाना शेरी ने *राजतरंगिणी* का फारसी अनुवाद किया।
8. टोडरमल ने *भागवत पुराण* का फारसी अनुवाद किया।
9. फैजी ने *नलदमयन्ती* का फारसी अनुवाद किया।
10. अब्दुल कादिर बदायूंनी ने *सिंहासन बत्तीसी* का फारसी अनुवाद किया।
11. अब्दुर्रहीम खानखाना ने *तुजुक-ए-बाबरी* का फारसी अनुवाद किया।
12. मुल्ला अहमद टट्ठवी, कासिम बेग एवं मुनव्वर ने अरबी में लिखी भूगोल की किताब *मज्म-उल-बुलदान* का फारसी अनुवाद किया।
13. अबुल फजल एवं शेख मुबारक ने अरबी कृति *हयात-उल-हयवान* का और फैजी ने *योगवशिष्ठ* का फारसी अनुवाद किया।

14. इस्लाम के प्रति हिन्दू जनता में भाईचारे एवं सम्मान की भावना जगाने के लिए अकबर ने फैजी से *अल्लोपषिद* ग्रन्थ की रचना करवाई।

15. कृष्णदास ने *फारसी संस्कृत कोश* की रचना की।

16. दारा शिकोह ने *श्रीमद्भगवदगीता, योगवशिष्ठ* तथा *बावन उपनिषदों* का फारसी अनुवाद करवाया।

जहाँगीर को फारसी एवं तुर्की भाषा का अच्छा ज्ञान था। मुगल काल में राजकुमारियाँ, रानियाँ एवं उच्च घरानों की लड़कियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। गुलबदन बेगम (बाबर की पुत्री), फारसी कवयित्री सलीमा सुल्तान (हुमायूँ की भतीजी), नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा, जेबुन्निसा, दुर्गावती, चाँद बीबी आदि उनमें प्रमुख थीं। आगरा, फतेहपुर सीकरी, दिल्ली, गुजरात, लाहौर, सियालकोट, जौनपुर, अजमेर आदि मुगल काल में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। फारसी मुगल शासन की राजभाषा थी। उस दौर का फारसी साहित्य तो समृद्ध था ही, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू का भी मुगल काल में पर्याप्त विकास हुआ। उन सभी उद्यमों में गम्भीर अनुवाद चिन्तन के सूत्र दिखते हैं।

मुगल बादशाह शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र और औरंगजेब के बड़े भाई दारा शिकोह का जन्म 20 मार्च 1615 को हुआ। उनकी माँ का नाम मुमताज महल था। सन् 1633 में युवराज बनाकर उनको उच्च मनसब प्रदान किया गया। सन् 1645 में इलाहाबाद, सन् 1647 में लाहौर और सन् 1649 में वे गुजरात के शासक हुए। सन् 1653 में कन्धार में हुई पराजय से उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हुई। शाहजहाँ उन्हें अपना उत्तराधिकारी मानते थे। दारा की यह प्रतिष्ठा उनके अन्य भाइयों को स्वीकार्य नहीं थी। औरंगजेब और मुराद उन्हें धर्मद्रोही कहते थे। अध्यात्म के प्रति लगाव उनमें बाल्यकाल से ही था। उनके सर्व-धर्म-सम्मिश्रण स्वभाव के कारण कुछ कट्टरपन्थी उन्हें धर्मद्रोही कहने लगे, पर दाराशिकोह के आचरण पर इसका कोई असर नहीं हुआ। हिन्दू मुस्लिम एकता और सांसारिक सहिष्णुता पर उनका अटूट विश्वास था। अन्ततः 10 सितम्बर, 1659 को दिल्ली में औरंगजेब ने उनकी हत्या करवा दी। औरंगजेब की क्रूरता का शिकार दारा के दोनों बेटों को भी बनना पड़ा।

इतिहास प्रमाणित तथ्य है कि सूफी मतावलम्बी शाहजादा दाराशिकोह बड़े ही धर्मनिरपेक्ष विद्वान और अनुवाद चिन्तक थे। हिन्दू, इस्लाम दोनों ही सम्प्रदायों के सन्तों से सदैव उनका गहन सम्पर्क रहता था। वे बड़े अनुसन्धित्सु लेखक थे। *सफीनात अल औलिया, सकीनात अल औलिया* (सूफी सन्तों के जीवनचरित), *रिसाला ए हकनुमा, तारीकात ए हकीकत* (सूफीवाद का दार्शनिक विवेचन), *अक्सीर ए आजम, हसनात अल आरिफीन*...आदि ग्रन्थों से उनकी श्रेष्ठ चिन्तनशीलता और सर्वेश्वरवादी धारणा का परिचय मिलता है। *मजमा उल बहरेन* में उन्होंने वेदान्त और सूफीवाद की शास्त्रीय व्याख्या से तुलनात्मकता की विलक्षण छवि प्रस्तुत की है। *सीर-ए-अकबर* (महान रहस्य) शीर्षक से 52 उपनिषदों के फारसी अनुवाद का उनका उद्यम स्तुत्य है। अनवरत अध्ययनशीलता और विलक्षण अनुशीलन दृष्टि से दाराशिकोह की ऐसी धारणा बनी थी कि वेदान्त और इस्लाम में तत्त्वतः भाषा के अलावा और कोई अन्तर नहीं है। उपनिषदों के अनुवाद का उनका उद्यम इस्लाम और वेदान्त के सामंजस्य की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

14.8 देशीय अनुवाद चिन्तन की कुछ आन्तरिक धाराएँ

मध्यकाल और उससे पूर्व के भारतीय अनुवाद चिन्तकों द्वारा किए गए कुछ और भी महत्त्वपूर्ण कार्यों का संज्ञान लेना हमारे लिए बहुत उपयोगी है। आज भी हमारे समक्ष रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, उपनिषद के सारस्वरूप गुरु गोविन्द सिंह की काव्य कृतियाँ मौजूद हैं, जहाँ उन्होंने समस्त आदिकालीन ग्रन्थों से प्राप्त ज्ञान अपने विलक्षण कौशल के साथ प्रस्तुत किया है। इसी तरह आचार्य सोमनाथ ने सन् 1725-1759 तक के चौंतीस वर्षों में *वाल्मीकि रामायण, रासपंचाध्यायी, सिंहासन बत्तीसी, मालती-माधव* जैसी कृतियों के आंशिक अनुवाद प्रस्तुत किए।

ग्यारहवीं शताब्दी में श्रीकृष्ण मिश्र द्वारा लिखा गया नाटक *चन्द्रोदयम्* अति चर्चित और बहुप्रशंसित ग्रन्थ है। प्रसिद्ध चिन्तक मल्ह कवि ने सन् 1544 में इसका अनुवाद कर दिया था। फिर भी जसवन्त सिंह (सन् 1643 में), ब्रजवासीदास (सन् 1760 में), गुलबा सिंह (सन् 1789 में), नानकदास (सन् 1789 में), धोंकल मिश्र (सन् 1799 में), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (*पाखण्ड विडम्बन* शीर्षक से *प्रबोधचन्द्रोदयम्* के तीसरे अंक का सन् 1872 में संस्कृत से हिन्दी अनुवाद) जैसे

विशिष्ट चिन्तकों ने इसका अनुवाद समकालीन पाठकों के लिए किया, तो इसका कुछ विशेष सन्दर्भ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ और भी हैं : बंगला से *विद्यासुन्दर* (सन् 1867), संस्कृत से *रत्नावली* (सन् 1868), कांचन पण्डित की कृति *धनंजय विजय* (सन् 1873), *मुद्राराक्षस* (फरवरी, 1875), राजशेखर की प्राकृत भाषा की कृति *कर्पूरमंजरी* (सन् 1876), *सत्यहरिश्चन्द्र* (सन् 1876 में राजा हरिश्चन्द्र की आख्यायिका पर केन्द्रित क्षेमेश्वर के रूपक *चण्डकौशिक* और रामचन्द्र रचित *सत्यहरिश्चन्द्र* के प्राथमिक अंश का अनुवाद) और विलियम शेक्सपीयर की कृति *मर्चेण्ट ऑफ वैनिश* का अनुवाद *दुर्लभ बन्धु* (सन् 1880)।

माना जाता है कि बंग जनपद में प्रचारित विद्यावती की आख्यायिका का मूल स्रोत वररुचि द्वारा बनाई हुई *चौरपंचाशिका* है। भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान का बंगला में काव्यलेखन किया, और बाद में उस काव्य के आलम्बन से महाराज यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने *विद्यासुन्दर* नाटक लिखा। भारतेन्दु रचित *विद्यासुन्दर* उसी की छाया है। *विद्यासुन्दर* के दूसरे संस्करण की भूमिका में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सूचित करते हैं कि उससे पूर्व उन्हें राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा किए गए अनुवाद *शकुन्तला* की जानकारी उपलब्ध थी। यह बात प्रकाशित अनुवाद के रूप में भले सच हो पर सचाई है कि प्रकाशन की असुविधा, प्रचार-प्रसार के अभाव और विद्वानों की स्वान्तःसुखाय नीति के कारण भारतीय अनुवाद चिन्तन के विपुल सूत्रों की जानकारी लोगों तक पहुँच नहीं पाई। प्रमाणस्वरूप मल्ह कवि द्वारा अनूदित *प्रबोधचन्द्रोदयम्* की पाण्डुलिपि का नाम लिया जा सकता है।

बाद के दिनों में तो महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सखाराम गणेश देउस्कर, बावू राव विष्णु राव पराड़कर, प्रेमचन्द, रांगेय राघव, राजा राममोहन राय (शंकर के *वेदान्त* और *ईशावास्योपनिषद्* के अनुवाद से अंग्रेजी अनुवाद में पहला भारतीय हस्तक्षेप), आर.सी.दत्त (*ऋग्वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत* और संस्कृत नाटकों के अनुवाद), दीनबन्धु मित्र, अरबिन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर, नागार्जुन, भीष्म साहनी, राजकमल चौधरी, राजेन्द्र यादव, मोहन रोकश, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, दत्तात्रय रामचन्द्र बेन्द्रे आदि द्वारा यथेष्ट अनुवाद हुए। इस दौरान भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद की प्रवृत्ति बढ़ी और भारतीय भाषा एवं संस्कृतियों के पारस्परिक अनुराग से जीवन व्यवस्था को भी पर्याप्त सहयोग मिला।

14.9 सारांश

अनुवाद के भारतीय चिन्तकों पर विचार करते हुए भाष्य, टीका, अन्वय, व्याख्या, अनुकूलन, आत्मसातीकरण के सारे प्रसंगों पर हमने सोचा है। निघण्टु, निरुक्त और सभी भाष्यों के साथ-साथ हमें मध्यकाल के सारे सन्तों की धारणाओं पर भी आपका ध्यान गया होगा, जिन्होंने संस्कृत की रामकथा, कृष्णकथा और नीति साहित्य को आत्मसात कर समकालीन जनभाषा में उन पर पुनर्रचना की। तुलसीदास, रहीम और सूरदास का नाम तो उनमें महत्त्वपूर्ण है ही; भक्तिकाल के सारे भक्त कवियों को आत्मसातीकरण की उस कोटि में रखे जाने जाने के बिन्दुओं पर भी हमने विचार किया है।

वैसे तो उपनिवेश काल के भी कई अनुवादक पाण्डुलिपि संयोजन की अवगति और प्रकाशन-सौविध्य के अभाव के कारण अलक्षित रह गए, पर सचाई है कि उससे पूर्व के असंख्य अनुवादक असूचित ही रह गए। कारण एक ढूँढने पर दस मिल जाते हैं। भारतीय मानस पर दो महान रचनाकारों की उक्ति 'काव्य प्रयोजन' की दिशा में उल्लेखनीय है गोस्वामी तुलसीदास ने कहा 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा', और कवि भिखारीदास ने कहा आगे के कवि पूछिहैं, तो कविताई; नाहीं तो सिया रघुराई कौ सुमिरन कौ बहानो हैं। अर्थात् हमारे प्राचीन मनीषियों के लिए आत्मतोष ही इतनी बड़ी चीज हो जाती रही है कि अपने कृति-कर्मों के दस्तावेजीकरण पर कभी उनका आग्रह नहीं हुआ। यश-लिप्सा का उन पर कभी ऐसा वर्चस्व नहीं हुआ कि वे उस तरफ उद्यमशील होते। राज्याश्रय का अवसर सबको मिल नहीं सकता था। प्रकाशन और हस्तलेख के संरक्षण की कोई विशेष तो क्या, साधारण व्यवस्था भी उपलब्ध नहीं थी। सामाजिक मान्यता का सीधा सम्बन्ध राजकीय संरक्षण से था। दीगर बात है कि राजकीय संरक्षण के बगैर भी तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास जैसे मनीषियों की श्रेष्ठतम नागरिक स्वीकृति हुई।

दरअसल रचनात्मक कार्यों में हमारे पुरखे आज के बुद्धिजीवियों की तरह ज्ञान और स्वानुभूतियों का वाणिज्य करने, और तत्काल अपने कृति-कर्म को भुनाने, उसका मुआबजा वसूलने में नहीं लग जाते थे। इसके साथ उनमें ऐसी धारणा भी नहीं रहती थी कि पहले की कही हुई बात को अपनी बात बताने में वे कोई चतुराई से भरी तरकीब सोचें। रहीम और तुलसीदास का नाम तो इस प्रसंग में बड़े आराम से लिया जा सकता है। अपनी रचनाओं में नीति-वचन कहते समय उन्होंने कभी कोई संकोच नहीं किया, बेधड़क उन्होंने वे बातें कहीं, जो पहले कही जा चुकी हैं। उनके ढेरो नीतिवचन ऐसे हैं, जो पुराण, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्य नीति, भर्तृहरि के शतकत्रय आदि की पंक्तियों के सीधे-सीधे अनुवाद लगते हैं। इस दिशा में कवि गंग का नाम भी सम्मान से लिया जाएगा। बाद के दिनों में तो वृन्द, गिरधर, बृजराज़ जैसे कई मनीषियों ने ऐसा किया। रोचक बात है कि इन प्रसंगों को लेकर कभी कोई द्वन्द्व-दुविधा किसी को नहीं हुई।... असल बात क्या थी? असल बात थी कि उस दौर के तमाम चिन्तकों के मानस-लोक में सृजन का उद्देश्य स्पष्ट था। उनके समक्ष स्वयं को प्रेय बनाने और हिस्से से अधिक का श्रेय लेने की कोई आसुरी बेचैनी अथवा फिरंगी लिप्सा नहीं थी। उनका ध्येय था कि ज्ञान और नीति की बात हमारे पूर्वजों ने कही है, जिस भाषा में कही, वह आज के नागरिक समझ नहीं रहे हैं, इसलिए हम फिर से कहेंगे, आज की बानी में कहेंगे, जो कहेंगे, वह 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' है, इसलिए कहेंगे, वह अनुवाद हो या आत्मसातीकरण; मौलिक हो या नकल...सारी बातें अप्रासंगिक हैं। प्रासंगिक यह है कि हमने कही है, और अच्छी बात कही, ज्ञान और नीति की बात कही है। सही अर्थों में अनुवाद का उद्देश्य यह होना चाहिए। आज के अनुवादकर्मियों और अनुवाद चिन्तकों को हमारे ये पुरखे अपने कृतिकर्म से यह प्रेरणा भी देते हैं कि अनुवाद का वास्तविक उद्देश्य ज्ञान, नीति, मनुष्यता, सामाजिकता, सांस्कृतिक अस्मिता का प्रसार और विस्तार होना चाहिए; साम्राज्य का विस्तार नहीं। वैसे साम्राज्य का विस्तार भी अनुवाद के बगैर सम्भव नहीं; पर यदि साम्राज्य विस्तार के लिए अनुवाद कर्म में दुर्वृत्ति लाई गई, तो वह विस्तार जल्दी ही संकोच में परिणत हो जाएगा। हालाँकि यह सचाई भी गौरतलब है कि साम्राज्य-विस्तार को जहाँ एक ओर अनुवाद से अपेक्षाएँ रहती हैं, वहीं दूसरी ओर यह विस्तार अनुवाद के फलक को विजित प्रदेशों की कला, भाषा, संस्कृति के आलोकपुंज से सम्पन्न भी करता है।

14- अभ्यास के लिए प्रश्न

1. भारत के प्राचीन अनुवाद चिन्तकों की चर्चा करते हुए भारतीय अनुवाद परम्परा में सायणाचार्य के योगदान पर विचार कीजिए।
2. निघण्टु और निरुक्त के सन्दर्भ से अनुवाद चिन्तक के रूप में यास्क के अवदान की व्याख्या कीजिए।
3. महावैयाकरण पाणिनि के अनुवाद चिन्तन पर अपना विचार दीजिए।
4. सम्राट चन्द्रगुप्त, अशोक और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय के अनुवाद चिन्तन पर टिप्पणी कीजिए।
5. मुगलकालीन अनुवाद चिन्तकों की अनुवाद दृष्टि का विवेचन कीजिए।
6. अनुवाद संस्कृति के सम्वर्द्धन में अकबर और दाराशिकोह के अवदान का मूल्यांकन कीजिए।
7. अनुवाद चिन्तन की भारतीय परम्परा की प्राचीनता की पड़ताल कीजिए।
8. इन पर टिप्पणी लिखिए :

   ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, यास्क और निरुक्त, पाणिनि एवं अष्टाध्यायी, सायनाचार्य, पतंजलि और महाभाष्य।

14.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *ऐतरेय आरण्यक,* सायण भाष्यसहित, 1898, पूना, आनन्दाश्रम।
2. *तैत्तिरीयारण्यक, सायण भाष्यसहित,* 1926, पूना, आनन्दाश्रम।
3. पाठक श्रीधरशास्त्री (सं.), *शांखायन आरण्यक,* 1922, पूना, आनन्दाश्रम।
4. कीथ ए.बी. (अनु.), *ऐतरेय आरण्यक* (अंग्रेजी अनुवाद), 1909।
5. शर्मा सुमन, *ऐतरेय आरण्यक एक अध्ययन,* 1981, दिल्ली, ईस्टर्न बुक लिंकर्स।

NOTE